30.00

मरयम

आशूरा का पैग़ाम औरतों के नाम

शहीद दुल्हन

कामयाब कौन हुआ?

मुहर्रम और मुस्लिम यूनिटी

फ़ैमिलीज़ में मुहब्बत की कमी

दहशतगर्दी

मुहर्रम 1432

आप पर लाखों

सलाम

या हुसैन

TAHA FOUNDATION
Lucknow India

इमाम हुसैन अ० की आख़िरी मुनाजात

आज़माईश की इन्तिहा, तीन दिन की भूख-प्यास, सुबह से ज़ोहर तक एक के बाद एक लाशे उठा-उठा कर लाना, दोस्तों और रिश्तेदारों का बिछड़ जाना, प्यास की शिद्दत से बच्चों को बिलबिलाता देखना, औरतों के मासूम और सहमे चेहरों का नज़ारा करना सभी कुछ तो है लेकिन यह उम्र में भी ज़ईफ़ लेकिन ईमान और अक़ीदे में जवान और बाहिम्मत तरीन शख़्स बंदगी की मेराज पर नज़र आ रहा है और इस हाल में भी मालिक की अज़मत और कुव्वत का इक़रार कर रहा है।

यह इमाम अ० की शहादत से पहले की आख़िरी मुनाजात है

"ऐ ख़ुदा कि तेरा मक़ाम बुलंद, तेरा ग़ज़ब शदीद, तेरी ताक़त हर ताक़त से बढ़कर है। तू अपनी मख़्लूक़ से बेनियाज़ है तेरी अज़मत हर जगह है, जो चाहता है कर सकता है, तेरी रहमत बंदों से क़रीब, तेरा वादा सच्चा, तेरी नेअमत शामिल, तेरा इम्तेहान अच्छा, जो बन्दे तुझे पुकारें उनसे क़रीब और जो कुछ तूने पैदा किया है तू उस पर मुकम्मल कंट्रोल रखता है और जो तौबा करे तू उससे तौबा को कुबूल करता है, तू जो इरादा करता है उस पर अमल कर सकता है। जो चाहे मालूम कर सकता है, जो तेरा शुक्र करते हैं तू उनका शुक्रिया अदा करता है। याद करने वाले याद रखता है, मैं तुझे पुकार रहा हूं कि तेरा मोहताज हूं और तेरी तरफ़ मुतवज्जेह हो रहा हूं कि तेरा फ़क़ीर हू, मैं ख़ौफ़ से तेरे हुज़ूर फ़रयाद कर रहा हूं, ग़म से तेरे सामने रो रहा हूं। मैं कमज़ोर हूं कि तुझसे मदद तलब कर रहा हूं, ख़ुद को तेरे हवाले कर रहा हूं कि तू काफ़ी है। ऐ ख़ुदा! मेरी और मेरी क़ौम के दरमियान फ़ैसला कर दे कि उन्होंने साज़िश की और मेरी मदद से दस्तबरदार हो गए और तेरे पैग़म्बर और तेरे हबीब मोहम्मद अ० की औलाद को क़त्ल किया। वह पैग़म्बर कि जिसको अपनी रिसालत के लिए तूने चुना था और उसे अपनी वही का अमीन बनाया। ऐ ख़ुदा! ऐ मेहरबान तरीन ज़ात! हादसे में हम पर कुशादगी और पेश आने वाले मसाएल से हमें नजात अता फ़रमा!

मैं तेरी क़ज़ा व क़द्र के मुक़ाबले में साबिर हूं। ऐ परवरदिगार कि तेरे अलावा कोई ख़ुदा नहीं है, ऐ फ़रयाद करने वाले के फ़रयादरस! मेरा तेरे अलावा कोई माबूद और परवरदिगार नहीं है। मैं तेरे हुक्म और तेरी तक़दीर पर राज़ी हूं। ऐ वह हमेशा रहने वाली ज़ात कि जिसकी कोई इन्तेहा नहीं है। ऐ मुर्दों को ज़िंदा करने वाले, ऐ वह ख़ुदा कि जो हर एक को उसके आमाल से परखता है! मेरे और उन लोगों के बीच फ़ैसला कर दे कि तू बेहतरीन फ़ैसला करने वाला है।"

फिर आप ने अपना चेहरा ज़मीन पर रखा और कहा, *"बिस्मिल्लाहि व बिल्लाहि वफ़ी सबीलिल्लाही व अला मिल्लति रसूलिल्लाह"*।

मिसबाहुल मुजतहिद, किताबुल इक़बाल

December-January 2010-11

Monthly Magazine

मरयम

इस महीने आप पढ़ेंगी...

हुसैनी इन्क़ेलाब की बरकतें	5
ख़ुदा की इनायतें	7
जनाबे ज़ैनब[स]	8
आशूरा का पैग़ाम, औरतों के नाम	11
करबला की शहीद दुल्हन	14
आशूरा: इमाम ख़ुमैनी की नज़र में	20
चश्मे तसव्वुर	22
कामयाब कौन हुआ?	25
मुस्लिम यूनिटी	27
फ़ैमिलीज़ में मुहब्बत की कमी	28
सकीना बिन्तुल हुसैन	30
ये है करबला का मक़सद	34
मेरी ज़िंदगी का सफ़र	36
पाक करने वाली चीज़ें	40
करबला: नॉन-मुस्लिम्स की नज़र में	42
आशूरा के आमाल	45

Chief Editor
S. M. Hasan Naqvi

Editorial Board
M. Fayyaz Baqir
Akhtar Abbas Jaun
Qamar Mehdi
Ali Zafar Zaidi

Managing Editor
Abbas Asghar Shabrez

Executive Editor
Fasahat Husain

Assist. Exec. Editor
M. Aqeel Zaidi

Contributors
Imtiyaz Abbas Rizvi
Aabid Raza Naushad
Azmi Rizvi
Fatima

Graphic Designer
Siraj Abidi
9839099435

Typist
Sufyan Ahmad

'मरयम' में छपे सभी लेखों पर संपादक की रज़ामन्दी हो, यह ज़रूरी नही है।
'मरयम' में छपे किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके खिलाफ़ कारवाई सिर्फ़ लखनऊ कोर्ट में होगी और 'मरयम' में छपे लेख और तस्वीरें 'मरयम' की प्रॉपर्टी हैं। इसका कोई भी लेख, लेख का अंश या तस्वीरें छापने से पहले 'मरयम' से लिखित इजाज़त लेना ज़रूरी है। 'मरयम' में छपे किसी भी कन्टेंट के बारे में पूछताछ या किसी भी तरह की कारवाई प्रकाशन तिथी से 3 महीने के अंदर की जा सकती है। उसके बाद किसी भी तरह की पूछताछ और कारवाई पर हम जवाब देने के लिए मजबूर नहीं हैं।
संपादक 'मरयम' के लिए आने वाले कन्टेंट्स मे ज़रुरत के हिसाब से तबदीली कर सकता है।

Printer & publisher Nazar Abbas Rizvi printed at Imagine Grafix, 4-Valmiki Marg, Lalbagh, Lucknow and published from 234/22 Thawai Tola, Victoria Street, Chowk, Lucknow 226003 UP-India

Contact No.: +91-522-4009558, 9956620017, 9453826444, email: maryammonthly@gmail.com

हुसैनी इन्क़ेलाब की बरकतें

हक़ की जीत हुई और बातिल हार गया और बेशक बातिल ख़त्म हो जाने वाला है। ये ख़ुदा की सुन्नत है जो हमेशा से चली आ रही है और ऐसे ही चलती रहेगी।

करबला में दो जमाअतें एक दूसरे के ख़िलाफ़ आमने-सामने हुईं। एक हक़ की जमाअत थी और दूसरी बातिल की। एक जमाअत ख़ुदाई मक़सद को पूरा करने आई थी और दूसरी जमाअत शैतानी मक़सदों को पूरा करने। एक तरफ़ इंसानी निजात का रास्ता था और दूसरी तरफ़ उसकी बर्बादी का ज़रिया। कुछ लोग हक़ का परचम लहराने आए थे और कुछ लोग बातिल का झंडा गाड़ने। एक गिरोह मज़लूमों और कमज़ोरों के हक़ों की हिफ़ाज़त के लिए आया था और दूसरा गिरोह इंसानियत को पामाल करने।

यह जंग जिस्मों और ज़ाहिरी इंसानों के बीच नहीं थी बल्कि यह जंग मक़सद और नज़रियों की जंग थी। यही वजह है कि यज़ीद मात खा गया और हुसैन[अ०] कामयाब हो गए। हुसैन[अ०] शहीद हो गए और ज़ाहिरी तौर पर इस दुनिया से चले गए लेकिन आपकी और आपके मददगारों की शहादत ने पूरे इस्लामी समाज में बेदारी की लहर पैदा कर दी, इस्लामी रगों में ताज़ा ख़ून गर्दिश करने लगा, मज़लूमों और कमज़ोरों पर छाया हुआ सुकूत तोड़ दिया, ज़ालिमों और जाबिरों के ख़िलाफ़ आवाज़ें बुलंद हुईं, लोगों के ज़ेहनों को बदल डाला और उनके सामने हक़ीक़ी और सच्चे इस्लाम का तसव्वुर पेश किया। यह जंग अगरचे ज़ाहिरी तौर पर एक ही दिन में ख़त्म हो गई लेकिन पूरी तारीख़ में हमेशा इसके असर और फ़ाएदे सामने आते गए और ज्यों-ज्यों तारीख़ आगे बढ़ती गई इसके नतीजे भी सामने आते गए। अहले हरम की असीरी ही से इसके सियासी असर लोगों पर ज़ाहिर हो गए थे। जब असीरों को 'शाम' की तरफ़ ले जाया जा रहा था तो 'तकरीत' पहुंचने पर वहां के ईसाई, अपने कलीसाओं में जमा हो गए और यज़ीदी फ़ौजों को अंदर आने की इजाज़त नहीं दी। जब 'लीना' शहर पहुंचे तो उस शहर के लोग जमा हो गए और इमाम हुसैन[अ०] और उनके मददगारों पर दरूद व सलाम भेजने लगे और यज़ीदी फ़ौजों को वहां से बाहर निकाल दिया। जब यज़ीदी फ़ौजों को पता चला कि 'जहीना' शहर के लोग भी फ़ौजों से लड़ने को तैयार हो गए हैं तो फ़ौरन वहां से भाग गए। जब 'कफ़रज़ाब' क़िला पहुंचे तो वहां के लोगों ने भी शहर के अंदर आने से उन्हें रोक दिया और जब 'हमस' पहुंचे तो वहां के लोगों ने यज़ीद और यज़ीदी लश्कर के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त मुज़ाहिरे किए और यह नारे लगाए कि 'क्या हम ईमान के बाद कुफ़्र और हिदायत के बाद गुमाराही को चुन लें। सिर्फ़ यही नहीं बल्कि उनसे भिड़ भी गए और बहुत से लोगों को जहन्नम भी पहुंचा दिया'।

(फ़रहंगे आशूरा/241)

आशूरा का असर

आशूरा के वाक़ेए ने इन्क़ेलाब बरपा कर दिया था। ग़फ़लत की नींद में पड़े हुए लापरवाह लोगों को जगा दिया था। मुर्दा ज़मीर इंसानों को ज़िन्दा कर दिया था। मज़लूमियत और इंसानियत की फ़रयाद बुलंद कर दी थी और पूरी दुनिया पर अपना असर छोड़ा था। हम यहां करबला से होने वाले असर की कुछ मिसालें पेश कर रहे हैं :

1- जिन लोगों के ज़ेहनों पर बनी उमय्या का जो दीनी असर था वह मिट गया क्योंकि रसूले ख़ुदा[स०] के नवासे की दर्दनाक शहादत ने बनी उमय्या की हुकूमत को जिहालत पर टिकी हुकूमत साबित कर दिया था और उसके जुल्मो-सितम को इस्लामी समाज में बेनक़ाब कर दिया जिस पर हज़ारों तरह के फ़रेब और धोखेबाज़ी के पर्दे पड़े हुए थे।

2- मुस्लिम समाज को गुनाहगारी और शर्मिन्दगी का एहसास दिलाया लोगों को यह बताया कि इस्लाम की हिफ़ाज़त हर मुसलमान पर वाजिब और इस्लामी टीचिंग्स को फैलाना हर मुसलमान का फ़रीज़ा है। इमाम हुसैन[अ०] ने अपने फ़र्ज पर अमल करके हमेशा के लिए मुसलामानों को उनकी

ज़िम्मेदारी का एहसास दिला दिया था।

3- ज़ुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करने और उसका मुक़ाबला करने के लिए हर तरह के डर और दहशत को ख़त्म कर दिया, जो उस वक़्त मुसलमानों और इस्लामी समाज में फैली हुई थी। मुसलमानों के अंदर जुरअत, दिलेरी और बहादुरी का जज़्बा पैदा कर दिया था।

4- दुनिया के सामने यज़ीदियों और उमवी हुकूमत को ज़लील कर दिया और उनकी इस्लाम दुश्मनी को साफ़ तौर पर दिखा दिया।

5- करबला के बाद के दूसरे मूवमेंट्स का हौसला बढ़ाया और लोगों को आज़ादी का सबक़ दिया।

6- एक नए इंसानी और अख़्लाक़ी स्कूल ऑफ थाट की बुनयाद डाली जो इंसानियत और अख़्लाक़ी वैल्युज़ की हिफ़ाज़त कर सके।

7- कई जगहों पर ज़ालिम हुकूमतों के ख़िलाफ़ नए-नए इन्क़ेलाब बरपा किए जहां लोगों ने करबला से सीख लेते हुए ज़ुल्म के आगे झुकने से इंकार कर दिया और अपने मज़हबी हुक़ूक़ को वापस लेने के लिए ज़ुल्म के ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए।

8- करबला के बाद की सारी इन्क़ेलाबी तहरीकें आशूरा की एहसानमंद हैं, जहां से सभी ने सब्र, बहादुरी, शुजाअत और शहादत का तसव्वुर लेकर अपनी जीत पक्की कर ली।

9- करबला और आशूरा, मुसलमान नस्लों के लिए इश्क़ ईमान व जिहाद और शहादत का एक सेंटर बन गई।

आशूरा की बरकतें और फ़ायदे

1- इस्लाम की जीत हुई और मिटने से बच गया, क्योंकि खिलाफत की गद्दी पर बैठने वाले ग़ासिब यज़ीद ने अपनी शैतानी करतूतों से इस्लाम के नाम पर इस्लाम को इतना धुंधला कर दिया था कि हक़ीक़ी इस्लाम की पहचान मुश्किल हो गई थी। जुआ, शराब, कुत्तों से खेल-कूद, नाच-गाना और ऐश व नोश की महफ़िलों की धूम-धाम, ग़ैर इस्लामी चीज़ों का फैलाव, रिआया पर ज़ुल्म, ह्युमन राइट्स की पामाली, औरतों की बेहुरमती वग़ैरा जैसे कुछ ऐसे नमूने हैं जिन्हें यज़ीद ने इस्लामी हाकिम के उनवान से अपना रोज़मर्रा का धंधा बना रखा था, और लोग इसी को इस्लाम समझने लगे थे। इमाम हुसैन[अ०] ने करबला के ज़रिए हक़ीक़ी इस्लाम को यज़ीदी इस्लाम से अलग करके पहचनवाया और दुनिया पर यह साफ़ कर दिया कि 'यज़ीद' इस्लाम के लिबास में सबसे बड़ी 'इस्लाम दुश्मन' ताक़त है।

2- अहलेबैते अतहार[अ०] की पहचान इस उम्मत के मिसाली रहबर के तौर से हुई। पैग़म्बरे इस्लाम[स०] के बाद मुसलमानों की तादाद कई गुना ज़्यादा बढ़ गई थी लेकिन वक़्त गुज़रने के साथ-साथ नामुनासिब लीडरशिप की वजह से मुसलमान असल इस्लाम से दूर हो गए थे। लालची हाकिमों ने अपने ज़ाती नफ़े की ख़ातिर हलाले मुहम्मदी को हराम और हरामे मुहम्मदी को हलाल कर दिया था और इस्लाम में बिदअतों का सिलसिला शुरू कर दिया था। तारीख़ गवाह है कि अभी सिर्फ़ पच्चीस साल पैग़म्बरे अकरम[स०] की वफ़ात को गुज़रे थे कि जब हज़रत अली[अ०] ने मस्जिदे नबवी में 35 हिजरी में नमाज़ पढ़ाई तो लोग ताअज्जुब से कहने लगे कि आज ऐसे लगा जैसे ख़ुद पैग़म्बर[स०] के पीछे नमाज़ पढ़ी हो लेकिन 61 हिजरी में अब नमाज़ का तसव्वुर ही ख़त्म हो गया था। ऐसे में पैग़म्बरे अकरम[स०] के हक़ीक़ी जांनशीन ने करबला के मैदान में तीरों, तलवारों और नेज़ों की बारिश में तीरों के मुसल्ले पर नमाज़ पढ़के अपनी इमामत और इस्लाम से मुहब्बत का सुबूत दे दिया था और साफ़ कर दिया था कि इस्लाम का हक़ीक़ी वारिस हर वक़्त इस्लाम की हिफ़ाज़त के लिए हर तरह की क़ुरबानी दे सकता है।

3- इमामत पर शियों का ऐतेक़ाद और मज़बूत हो गया। दुश्मनों के प्रोपेगंडों ने कुछ शियों के ऐतेक़ाद पर गहरा असर डाल रखा था यहां तक कि कुछ लोग इमाम को भी मशवेरा दे रहे थे कि आप ऐसा करें और ऐसा न करें। कुछ लोगों की नज़र में इमामत की अहमियत भी कम हो गई थी। इमाम हुसैन[अ०] की तहरीक ने साबित कर दिया कि क़ौम की रहबरी का अगर कोई मुसतहेक़ है तो वक़्त का इमाम है और वह जानता है कि किस वक़्त कौन सा क़दम उठाना चाहिए और किस तरह से इस्लाम को मिटने से बचाया जा सकता है।

4- लोगों को आगाह रखने के लिए मिम्बर और वअज़ जैसा एक बहुत बड़ा सिस्टम सामने आया। अज़ादारी की मजलिसों की सूरत में हर जगह और हर वक़्त एक ऐसा मीडिया सामने आया जिसने हमेशा दुश्मनों की तरफ़ से होने वाली साज़िशों, प्रोपेगंडों और कल्चरल यलग़ार से मुस्लिम समाज को आगाह रखा और साथ-साथ हक़ और सदाक़त का पैग़ाम भी लोगों तक पहुंचता रहा।

5- आशूरा, ज़ुल्म, ज़ालिम, बातिल और यज़ीदियत के ख़िलाफ़ इन्क़ेलाब का आग़ाज़ था। इमाम हुसैन[अ०] ने यज़ीद से साफ़-साफ़ कह दिया था कि 'मुझ जैसा तुझ जैसे की बैअत नहीं कर सकता' यानी जब भी यज़ीदियत सर उठाएगी तो हुसैनियत उसके मुक़ाबले में डट जाएगी। जब भी यज़ीदियत इस्लाम को चेलेंज करेगी तो हुसैनियत इस्लाम को सर बुलंद रखेगी और यज़ीदियत को नाबूद करेगी। यही वजह है कि आशूरा के बाद बहुत से ज़ालिम हुकमरानों के ख़िलाफ़ इन्क़ेलाब शुरू हुए और बातिल के ख़िलाफ़ रूनुमा होने वाले कामयाब तरीन इन्क़ेलाब में ईरान का इस्लामी इन्क़ेलाब है जिसने ढाई हज़ार साल की शाही हुकूमत को जड़ से उख़ाड़ फेंका। यह अज़ादारी, गिरया, रोना और रूलाना, मजलिसें, ज़िक्रे मुसीबत, मरसिया, नौहा वग़ैरा ही वह अज़ादारी है कि जिसकी वजह से आज तक इस्लाम ज़िन्दा और बाक़ी है।

इमाम ख़ुमैनी ने साफ़-साफ़ कह दिया था, "हमारे पास जो कुछ है सब इसी मोहर्रम और सफ़र की वजह से है।"

यह इस्लामी इन्क़ेलाब, आशूरा का बेहतरीन और खुला हुआ फ़ायदा है जो वक़्त के यज़ीदों के लिए एक बहुत बड़ा चेलेंज बन गया है जिसको मिटाने के लिए पूरी दुनिया एक साथ हो गई है।

लेकिन हमारा अक़ीदा है कि यह इन्क़ेलाब इमामे ज़माना[अज०] के इन्क़ेलाब की शुरूआत है और यह इन्क़ेलाब, इन्क़ेलाबे मेहदी[अज०] से जुड़कर रहेगा, इंशाअल्लाह।

ख़ुदा की इनायतें

■ इमाम ख़ुमैनी

ख़ुदा वन्दे आलम अपने बन्दों पर बहुत मेहरबान है। इसलिए उसने उन्हें अक़्ल अता की है, अपनी ख़्वाहिशों और नफ़्स से लड़ने की ताक़त दी है और उसने अपने नबियों और रसूलों को भेजा है ताकि उसके बंदे हिदायत हासिल कर सकें, ख़ुद को सुधारें और जहन्नम के तकलीफ़देह अज़ाब से बच जाएं। अगर यह तमाम इन्तेज़ाम इन्सान को न सुधार सकें तो ख़ुदाए मेहरबान उसे दूसरे तरीक़ों से ख़बरदार करता है। तरह-तरह की बीमारियों, आज़माइशों और फ़क़्रो-फ़ाक़े वग़ैरा से तवज्जो दिलाता है। वह एक माहिर हकीम और मेहरबान तीमारदार की तरह कोशिश करता है कि इस बीमार इंसान की ख़तरनाक रूहानी बीमारियों का इलाज हो जाए। अगर किसी बंदे पर ख़ुदा वंदे आलम की इनायतें और मेहरबानियां हों तो उसे इन मुसीबतों और बलाओं का सामना करना पड़ता है ताकि वह ख़ुदा की तरफ़ ध्यान दे सके और नेक बन जाए। तरीक़ा यही है और इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है लेकिन इंसान को चाहिए कि वह अपने पैरों पर चलकर इस तरह से ख़ुद को सुधारे कि अपने मनचाहे मक़सद तक पहुंच जाए। ख़ुदा इतना रहीम है कि अगर इंसान इन मुश्किलों से भी सबक़ नहीं लेता और जन्नत का हक़्दार नहीं बन पाता तो आख़िर में मौत के वक़्त उस पर सख़्तियां की जाती हैं कि शायद वह पलट आए और मुतवज्जे हो जाए या अगर फिर भी उस पर असर न हो और वह न सुधर सके तो क़ब्र, आलमे बरज़ख़ और उसके बाद भी उस पर सख़्तियां और तरह-तरह के अज़ाब नाज़िल किए जाते हैं ताकि वह पाक-साफ़ हो जाए और उसे जहन्नम में न जाना पड़े। ख़ुदा की तरफ़ से यह सब इनायतें और मेहरबानियां ही हैं जो इंसान को जहन्नमी होने से बचाती हैं। अब अगर इन तमाम इनायतों और मेहरबानियों से भी इसका इलाज न हो सके तो फिर क्या किया जाए? इस जगह पर एक और आख़िरी मौक़ा पेश आता है और वह है आग से दाग़ना। इसकी नौबत इसलिए आती है क्योंकि इंसान ने अपने आपको नहीं सुधारा और उसके इलाज के लिए अपनाया जाने वाला कोई तरीक़ा काम नहीं आ सका। इसलिए ये ज़रूरत पेश आई कि ख़ुदाए मेहरबान आग के ज़रिए अपने बंदों का इलाज करे, जिस तरह सोना आग से साफ़-सुथरा और ख़ालिस किया जाता है।

यह हमारी और आपकी भलाई के लिए है ताकि हम और आप मोमिन बन सकें। ख़ुदा न करे कि मामला यहां तक पहुंचे कि ये तरीक़े और इलाज फ़ाएदेमंद साबित न हों और जन्नत का मुस्तहक़ बनने के लिए इस आख़िरी इलाज की ज़रूरत पड़े। ख़ुदा नाख़ास्ता ऐसा वक़्त आए कि इंसान को थोड़ी देर के लिए भी जहन्नम में जाना पड़े और वह उस आग में जले ताकि अपनी अख़्लाक़ी और रूही बीमारियों और शैतानी सिफ़तों से पाक हो सके। सबसे ख़ास बात ये है कि ये सारे तरीक़े भी ख़ुदा की मेहरबानी की वजह से सिर्फ़ उन लोगों के लिए हैं जिनके गुनाहों ने उन्हें इस हद तक न पहुंचाया हो कि ख़ुदा का रहमो-करम उनसे बहुत दूर हो गया हो। ख़ुदा न करे कि इन्सान गुनाहों की ज़ियादती की वजह से ख़ुदा का ठुकराया हुआ और उसकी मेहरबानियों से महरूम हो जाए और उसके लिए हमेशा-हमेशा जहन्नम में रहने के अलावा कोई और रास्ता बाक़ी न बचे। एक बात से डरते रहना चाहिए कि कहीं वह मौक़ा न आ जाए कि इन्सान ख़ुदा की रहमत से इतना दूर हो जाए कि उसके अज़ाब और ग़ज़ब की वजह से इंसान के लिए जहन्नम के अलावा कोई जगह ही न बचे। कहीं हमारे आमाल और किरदार ऐसे न हों कि हमारी सारी तौफ़ीक़ ही छिन जाए और हमारा जिस्म जो एक गर्म पत्थर को हथेली पर रखने की ताक़त नहीं रखता, हमेशा के लिए जहन्नम की आग में झोंक दिया जाए।

हमें चाहिए कि अपने आपको इस आग से बचाएं। निफ़ाक़, ग़ीबत, बदअख़लाक़ी और बदअमली से दूर रहें। लोगों के साथ अच्छा बर्ताव करें। आलिमों की इज़्ज़त करें, उनके कहे हुए को ग़ौर से सुनें और जाहिलों की बातों पर कान न धरें। भाई चारे और मेल-जोल को बाक़ी रखें। नेक आमाल और अच्छे अख़लाक़ के ज़रिए अपने आपको ख़ुदा से क़रीब करें ताकि हमको भी जन्नत मिल सके।

सफ़ीरे करबला

ज़ैनब स०

निगहत नसीम, सिडनी

कितनी मुबारक घड़ी थी! पूरे मदीने में ख़ुशियों की लहर दौड़ रही थी। रसूले इस्लाम[स०] के घर में उनकी बेटी हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[अ०] की आग़ोश में एक चांद का टुकड़ा उतर आया था। ख़ुद नबी करीम[स०] सफ़र में थे। हज़रत अली[अ०] ने बेटी को आग़ोश में लिया। एक कान में अज़ान और एक में अक़ामत कही और देर तक सीने से लगाए रहे। सब रसूल अल्लाह[स०] के आने के इन्तिज़ार में थे कि देखें हुज़ूरे अकरम[स०] अपनी नवासी का क्या नाम रखते हैं। रसूले इस्लाम[स०] जब भी कहीं जाते थे तो अपनी बेटी फ़ातिमा[स०] के दरवाज़े पर सलाम करके रुख़सत होते थे और जब भी कहीं से वापस आते थे तो सबसे पहले दरे सैय्यदा पर आकर सलाम करते थे और बेटी से मुलाक़ात के बाद कहीं और जाते थे। आज भी आप जैसे ही सफ़र से पलटे तो सबसे पहले फ़ातिमा[अ०] के घर में दाख़िल हुए और सब को सलाम किया। रसूले इस्लाम[स०] को देखकर सब ताज़ीम के लिए ख़ड़े हो गए। आपने बच्ची की पैदाईश पर मुबारकबाद दी और हज़रत अली[अ०] ने बेटी को मां की आगोश से लेकर नाना की आग़ोश में दे दिया। रिवायत में है कि नबी अकरम[स०] ने प्यार किया और कुछ देर के बाद फ़रमाया, "ख़ुदा ने इस बच्ची का नाम "ज़ैनब" रखा है।"

फ़ज़ीलतों और करामतों से भरे घर में रसूले इस्लाम[स०], अली[अ०] और फ़ातिमा[अ०] जैसी अज़ीम हस्तियों के दामन में ज़िंदगी बसर करने वाली हज़रत ज़ैनब[अ०] का वजूद इंसानी तारीख़ का एक बहुत ख़ास किरदार बन गया है क्योंकि इमाम के लफ़्ज़ों में इस 'आलिम-ए-ग़ैरे मोअल्लिमा और फ़हीम-ए-ग़ैरे मुफ़हिमा' ने अपनी बेमिसाल ज़िहानत से काम लेकर इसमती माहौल से भरपूर फ़ायदा उठाया और ख़ुद अख़्लाक़ और कमाल की बहतरीन मिसाल बन गईं।

जब भी हम जनाबे ज़ैनब[अ०] की ज़िंदगी पर नज़र डालते हैं तो उनके रूहानी कमाल की किरनें हमारी आंखों को चकाचौंध कर देती हैं, चाहे वह अपनी मां की आग़ोश में चमकती और मुस्कुराती तीन-चार साल की एक मासूम बच्ची हो, चाहे वह कूफ़े में ख़लीफ़ए वक़्त की बेटी की हैसियत से इस्लामी औरतों के बीच अपने इल्मी लेक्चर्स के ज़रिए इल्म और मारेफ़त के मोती निछावर करने वाली 'अक़ीलए क़ुरैश' हो या करबला के मारके में अपने भाई हुसैन[अ०] की शरीक, फ़ातहे कूफ़ा व शाम हो, हर जगह और हर मंज़िल पर अपने वजूद और अपने सुनहरे किरदार और अमल के लिहाज़ से सबसे अलग और बेमिसाल नज़र आती हैं।

रिवायत के मुताबिक़ अभी आप चार साल की भी नहीं हुईं थीं कि हज़रत अली[अ०] एक ज़रूरतमंद के साथ घर में दाख़िल हुए और जनाबे फ़ातिमा ज़हरा[अ०] से अपने मेहमान के लिए खाने की फ़रमाईश की। मासूमए आलम ने अर्ज़ किया कि या अली! इस वक़्त घर में खाने को तो कुछ भी नहीं है। सिर्फ़ थोड़ी सा खाना है जो ज़ैनब के लिए रखा हुआ है। यह सुनकर अली व फ़ातिमा की बेटी दौड़ती हुई मां के पास गई और मुस्कुराते हुए कहा कि मादरे गिरामी! मेरा ख़ाना बाबा के मेहमान को खिला दीजिए, मैं बाद में खा लूंगी और मां ने बेटी को सीने से लगा लिया और बाप की आंखों में ख़ुशी की किरनें बिखर गईं। अली[अ०] ने मुस्कुराकर कहा कि 'तुम वाक़ई ज़ैनब हो।'

सच है कि हादसे किसी से कहकर नहीं आया करते मगर कुछ लोग हादसों से असर लेकर अपना वजूद खो देते हैं मगर मुहम्मदे अरबी[स०] का घराना, हादसों के हुजूम में भी अपने फ़र्ज़ और अपने नूरानी वजूद को हालात की नज़र होने नहीं देता। जनाबे ज़ैनब[अ०] ने भी बचपन में ही अपने नाना मुहम्मदे अरबी[स०] को इस दुनिया से जाते देखा था और फिर कुछ ही महीनों के बाद अपनी मुसीबतों में फंसी हुई मज़लूम मां की मुहब्बतों से महरूम होना पड़ा था लेकिन इन हादसों ने आने वाले ज़माने के अज़ीम फ़रीज़ों की अदाएगी के लिए पांच साल की ज़ैनब के हौसलों को और ज़्यादा ताक़तवर बना दिया था।

जनाबे ज़ैनब ने जनाबे फ़ातिमा ज़ेहरा[अ०] की

शहादत के बाद हज़रत अली[अ०] के घर की सारी ज़िम्मेदारियों के अलावा इस्लामी औरतों की तहज़ीब और तालीम की ज़िम्मेदारियो को भी इस तरह अपने कंधों पर संभाल लिया था कि तारीख़ आपको 'सानिए ज़ेहरा' और 'अक़ीलए बनी हाशिम' जैसे ख़िताब अता करने पर मजबूर हो गई। हज़रत ज़ैनब[अ०] ने नबुव्वत और इमामत के गुलशन से इल्म और मारेफ़त के फूल इस तरह अपने दामन में समेट लिए थे कि आपने हदीसों को बयान करने और तफ़सीरे कुरआन के लिए मदीने और उसके बाद हज़रत अली[अ०] के दौरे ख़िलाफ़त में कूफ़े के अंदर बाक़ाएदा मदरसा खोला था जहां औरतों की एक बड़ी तादाद इस्लामी उलूम की तालीम हासिल करती थी।

हज़रत अली[अ०] ने अपनी बेटी जनाबे ज़ैनबे कुबरा[अ०] की शादी अपने भतीजे जनाबे अब्दुल्लाह इब्ने जाफ़र से की थी। रसूले इस्लाम[स०] की रेहलत के बाद अली बिन अबी तालिब[अ०] ने ही उनकी भी परवरिश की थी। इसके बावजूद रिवायत में है कि हज़रत अली[अ०] ने अब्दुल्लाह इब्ने जाफ़र से शादी से पहले यह वादा ले लिया था कि वह शादी के बाद ज़ैनबे कुबरा[अ०] के मक़सदों में कभी रूकावट नहीं बनेंगे। अगर वह अपने भाई हुसैन[अ०] के साथ सफ़र करना चाहें तो वह अपने इस काम में आज़ाद होंगी। ऐसा ही हुआ भी, जनाबे अब्दुल्लाह इब्ने जाफ़र ने भी अपने वादे पर अमल किया और हज़रत अली[अ०] के ज़माने से लेकर इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०] के ज़माने तक हमेशा दीने इस्लाम की ख़िदमत और इमामे वक़्त की पुश्तपनाही के अमल में जनाबे ज़ैनब की मदद की। हज़रत अली[अ०] की शहादत के बाद जनाबे ज़ैनब[अ०] को अपने शौहर के घर में हमेशा आराम और आसाईश की ज़िंदगी मयस्सर थी। जनाबे अब्दुल्लाह पैसे के लिहाज़ से अच्छी हैसियत के थे। इसलिए उन्होंने हर तरह की दुनियावी और रूहानी सहूलतें हज़रत ज़ैनब[अ०] के लिए मुहैय्या कर रखी थीं। वह जानते थे कि जनाबे ज़ैनब[अ०] अपने भाईयों, इमाम हसन[अ०] और इमाम हुसैन[अ०] से बहुत ज़्यादा मुहब्बत करती हैं और उनके बग़ैर नहीं रह सकतीं, इसलिए वह इस राह में कभी रुकावट नहीं बने। ख़ास तौर पर जनाबे ज़ैनब[अ०] इमाम हुसैन[अ०] से बहुत ज़्यादा क़रीब थीं और यह मुहब्बत बचपन से ही दोनों में परवरिश पा रही थी। रिवायत में है कि जब आप बहुत छोटी थीं, एक दिन मासूमए आलम ने पैग़म्बरे इस्लाम[स०] से अर्ज़ की कि बाबा! मुझे ज़ैनब और हुसैन की मुहब्बत देखकर कभी-कभी हैरत होती है कि यह लड़की अगर हुसैन को एक लम्हे के लिए भी नहीं देखती है तो बेचैन हो जाती है। उस वक़्त रसूल अल्लाह[स०] ने फ़रमाया था कि बेटी! वह करबला में हुसैन की मुसीबतों और सख़्तियों में शरीक होगी। इसीलिए जनाबे ज़ैनब ने अपने अज़ीम दीनी मक़सद के लिए आराम और आसाईश की ज़िंदगी को छोड़ दिया था और जब इमाम हुसैन[अ०] ने इस्लाम की हिफ़ाज़त और इस्लामी उम्मत की इस्लाह के लिए करबला का सफ़र तय कि तो जनाबे ज़ैनब[अ०] भी भाई के साथ हो गईं।

जनाबे ज़ैनब[अ०] ने अपनी ज़िंदगी के अलग-अलग हिस्सों में इस्लामी समाज में होने वाले तरह-तरह के बदलाव बहुत क़रीब से देखे थे। ख़ास तौर पर ये बदलाव कि किस तरह बनी उमय्या ने जिहालत के ज़माने के क़ौमी और नसली तास्सुब को रिवाज दे रखा था और खुल्लम-खुल्ला इस्लामी ऐहकाम को पामाल कर रहे थे। अली व फ़ातिमा की बेटी अपने भाई के साथ इस्लामी उसूलों को बचाने के लिए हर क़ुरबानी देने को तैयार हो गई। ज़ाहिर है कि भाई की मुहब्बत अपनी जगह, जनाबे ज़ैनब[अ०] इस्लाम को बचाने और बनी उमय्या से इस्लाम की निजात के लिए इमाम हुसैन[अ०] से साथ हुई थीं क्योंकि आपका पूरा वुजूद हक़ और इस्लाम के इश्क़ से सरशार था।

जनाबे ज़ैनब ने वाक़ेए करबला में अपनी बे मिसाल शिरकत के ज़रिए तारीख़ में हक़ की सर बुलंदी के लिए लड़ी जाने वाली सबसे अज़ीम जंग और जिहाद व सरफ़रोशी के सबसे बड़े मारकए करबला के इंक़ेलाब को रहती दुनिया के लिए ज़िंदा बना दिया। जनाबे ज़ैनब[अ०] की क़ुरबानी का बड़ा हिस्सा मैदाने करबला में नवासए रसूल इमाम हुसैन[अ०] की शहादत के बाद अहलेबैते रसूल[स०] की असीरी और कूफ़ा व शाम के बाज़ारों और दरबारों में गुज़रा है। इस दौरान जनाबे ज़ैनबे कुबरा की शख़्सियत के कुछ अहम पहलू बड़े ख़ूबसूरत अंदाज़ में जलवागर हुए हैं। ख़ुदा के फ़ैसले पर हर तरह राज़ी रहना और इस्लामी एहकाम के सामने सख़्त तरीन हालात में भी सर को झुका देना अली ही की बेटी का काम है। सब्र, शुजाअत, फ़साहत, बलाग़त और शुऊर, वह क्वालिटीज़ हैं जो आपके अंदर कूट-कूट कर भरी हुई थीं और यही वह क्वालिटीज़ हैं जिनपर चलते हुए आप अपनी अज़ीम इंसानी ज़िम्मेदारियों की अदाएगी में पूरी तरह कामयाब नज़र आती हैं। जनाबे ज़ैनब[अ०] ने अपने वक़्त के ज़ालिमों और जल्लादों के सामने पूरी दिलेरी के साथ असीरी की परवाह किए बग़ैर मज़लूमों के हक़ों की हिमायत में आवाज़ उठाई है है और इस्लाम व क़ुरआन की हक़्क़ानियत का परचम बुलंद किया है। जिन लोगों ने नवासए रसूल[स०] को एक वीरान जंगल में क़त्ल करके, हक़ीक़तों को पलटने और अपने हक़ में उलटा करके पेश करने की जुरअत की थी, जनाबे ज़ैनब ने भरे दरबार में उनके जुर्मों को बेनक़ाब करके कूफ़ा व शाम के सोए हुए लोगों की आंखों पर पड़े हुए बेशर्मी के पर्दे चाक किए हैं और ये सब आपने उस वक़्त में किया जब ज़ाहिरी हालात बनी उमय्या और उनके ख़लीफ़ा, यज़ीदे फ़ासिक़ के हक़ में थे। जनाबे ज़ैनब ने अपने ख़ुतबों के ज़रिए बनी उमय्या की ज़ालिमाना चालों को बेनक़ाब करके शुरू में ही नवासए रसूल के क़ातिलों की मुहिम को नाकाम कर दिया था।

हम जनाबे ज़ैनब[अ०] के एक बड़े ही ख़ूबसूरत क़ौल पर अपनी बात ख़त्म करते हैं। आप फ़रमाती हैं, **'ख़ुदा को तुम पर जो क़ुव्वत और इक़्तेदार हासिल है उसको सामने रखते हुए उससे डरते रहो और वह तुम से किस क़द्र क़रीब है उसको सामने रख कर गुनाह करने से शर्म करो।''**

ऐ करबल के नेता आजा

■ रियाज़ हैदर अख़्तर

इस संकट कालीन जगत में हमको सच्ची राह दिखा जा
ऐ करबल के नेता जग को फिर सुख का संदेश सुना जा
फिर सच का अभिमान बढ़ा जा
पूरब, पच्छिम, दक्खिन, उत्तर हिंसा का अधिकार जमा है
नील गगन की आंखें नम हैं धरती का दिल धड़क रहा है
ज़ालिम चाऊ जैसे लाखों शिम्र जगत में जाग उठे हैं
और यज़ीदी परचम लेकर इंसानों पर टूट पड़े हैं
मुंह फैलाए भोले-भाले इंसानों पर लपक रहे हैं
जुल्म का डमरू हाथ में लेकर बस्ती-बस्ती थिरक रहे हैं
सुब्हे बनारस के जलवों की रंगीनी पर वार किया है
शामे अवध के नज़्ज़ारो की ताबानी को ताक लिया है
भरे पड़े मैख़ानों में कुछ टूटे साग़र पड़े हुए हैं
हर शै पर बेहोशी सी है मैकश गुम सुम खड़े हुए हैं
मीना का मन ढलक गया है जामों के दिल टूट गए हैं
सुब्हों की शहनाई चुप है शामों के दिल टूट गए हैं
मीठी मीठी आग में ग़म की सारी दुनिया सुलग रही है
जीवन ईंधन बना हुआ है, दुनिया दौज़ख़ बनी हुई है
मुल्ला जुल्म का रोना रोकर मस्जिद ही में टोल गया है
भोला पंडित किश्न कनहय्या के चर्णो पर झूल गया है
पापों के गहरे सागर में धर्म की नय्या डूब न जाए
और अधर्मी नेताओं का दुनिया पर परचम लहराए
आज ये दुनिया के रखवाले सच्ची राहें छोड़ चुके हैं
आपस में भाई चारे के सारे रिश्ते तोड़ चुके हैं
ऐ करबल के नेता! आ जा
इस संकट कालीन जगत में हमको सच्ची राह दिख जा
फिर सुख का संदेश सुना जा आजा आजा आजा आजा

आशूरा का पैग़ाम औरतों के नाम

आशूरा के पैग़ाम को सिर्फ़ कुछ लफ़्ज़ों में नहीं समेटा जा सकता क्योंकि इसका पैग़ाम रहती दुनिया तक सबके लिए और ख़ास तौर पर समाज की आधी आबादी यानी औरतों के लिए हमेशा के लिए ज़िंदा और पाएन्दा है। सच ये है कि आशूरा में मर्दों के साथ-साथ औरतों का रोल भी बिल्कुल साफ़-साफ़ दिखाई पड़ता है।

आशूरा, काफ़ी हद तक हुसैनी कारवां में शामिल औरतों ख़ास कर जनाबे ज़ैनब की क़ुरबानियों और बहादुरी की देन है। इसीलिए आशूरा में औरतों के लिए कई बड़-बड़े पैग़ाम पाए जाते हैं। इन पैग़ामों को बयान करने का मक़सद ये है कि सियासी और समाजी एतेबार से औरतों के बारे में जो बातें ज़ेहनों में बिठा दी गईं हैं कि इस्लाम औरतों को समाजी सरगर्मियों से दूर रहने और उनको घर की चार दीवारी में बंद ज़िंदगी गुज़ारने का हुक्म देता है, यह सब सिर्फ़ साम्राज का प्रोपेगंडा और इस्लाम के ख़िलाफ़ एक साज़िश है। आशूरा की तारीख़ साफ़ तौर पर बताती है कि औरतों ने समाजी कामों यहां तक कि जिहाद में भी न सिर्फ़ ये कि मर्दों का साथ दिया बल्कि उसे एक ज़िम्मेदारी के तौर पर पूरा किया है।

आशूरा की तहरीक में औरतों ने जो अहम काम अंजाम दिए हैं उनमें से कुछ ये हैं:-

1- जिहाद में शिरकत।

2- मुजाहिदों की हौसला अफ़ज़ाई।

3- सब्र का मुज़ाहिरा और उसकी तालीम।

4- इन्क़ेलाब का पैग़ाम दूसरों तक पहुंचाना।

5- असीरी के दौरान भी उसूलों और वेल्युज़ की पाबंदी।

6- मुश्किल हालात में भी शहीदों के घरानों की हिमायत।

जिहाद में शिरकत

तहरीके आशूरा में पांच बहादुर औरतें ऐसी हैं जो आशूर के दिन खेमों से मैदान में निकल आईं। जिनमें मुस्लिम बिन औसजा की कनीज़, वहबे कल्बी की मां और बीवी, उम्मे वहब, अम्र बिन जनादा की मां और हज़रत ज़ैनबे कुबरा शामिल हैं।

उम्मे वहब आशूरा के दिन अपने शौहर के जनाज़े पर शहीद हुईं। इसी तरह शहादत के वक़्त अम्र बिन जनादा की उम्र सिर्फ़ ग्यारह साल थी। दुश्मन ने उनका सर काट कर ख़यामे हुसैनी की तरफ़ फेंका तो उनकी मां ने सर को गोद में उठा लिया और चेहरे को चूमकर कहा, "ऐ मेरे नूरे नज़र! मेरे दिल की ठंडक! तुमने बहुत अच्छी जंग की।" उसके बाद सर को दुश्मन की फ़ौज की तरफ़ उछाल दिया और एक ख़ेमे की टूटी हुई लकड़ी उठाकर दुश्मन पर हमला कर दिया।

मुजाहिदों और बाक़ी बचने वालों की हौसला अफ़ज़ाई

आशूरा की तहरीक में मौजूद औरतों ने बताया कि हक़ की पहचान और हक़ परस्ती कितना मुश्किल काम है। उन्होंने जान-माल और हर क़िस्म की ख़्वाहिशों को क़ुरबान करके ख़त्म न होने वाले नमूने पेश किए। उम्मे वहब ने जब देखा कि इमाम[अ] के असहाब शहीद हो रहे हैं तो अपने बेटे के पास जाकर कहा, "ऐ बेटा! मां की आरज़ू पूरी नहीं करोगे? जाओ जन्नत तुम्हारे इन्तिज़ार में है।" यह सुनकर वहब मैदान की तरफ़ रवाना हो गए। रजज़ पढ़कर ख़ुद को पहचनवाया और दुश्मनों के एक गिरोह को हलाक करके मां के पास आकर कहा, "अम्मा! क्या अब आप मुझ से राज़ी हैं?"

मां ने कहा, "मैं तुमसे उस वक़्त तक राज़ी नही हूंगी जब तक कि तुम हुसैन[अ] पर क़ुरबान न हो जाओ।"

इसी तरह मुस्लिम बिन औसजा की बीवी उम्मे ख़ल्फ़ भी एक बड़ी उम्र की औरत थीं जो अपने शौहर के साथ करबला में आईं थीं। जिस वक़्त उम्मे ख़ल्फ़ ने क़ुरबानी के लिए बेटे को पेश किया तो रसूल[स] के नवासे ने बच्चे से फ़रमाया, "अभी तुम्हारे बाप शहीद हुए हैं। इसलिए शायद तुम्हारी मां तुम जैसे जवान की मौत को बर्दाशत न कर सके। वापस जाओ।" उस जवान ने जवाब दिया, "मेरी मां ने ही मुझे जंग का हुक्म दिया है।" फिर दिलेराना जंग की यहां तक कि शहीद हो गया।

इस तरह जब इमाम हुसैन[अ] ने करबला के रास्ते से जुहैर बिन क़ैन के लिए ख़त भेजा। ख़त पहुंचा तो वह लोग उस वक़्त खाना खा रहे थे। जुहैर के हाथ में निवाला जूं का तूं रह गया। ऐसे वक़्त में जुहैर की बीवी ने कहा, "सुबहान अल्लाह! फ़रज़ंदे रसूल[स] आपको बुला रहे हैं और आप खामोश बैठे हैं। उठिए और जल्दी से उनकी ख़िदमत में पहुंचिए।"

सब्र का मुज़ाहिरा और उसकी तालीम

आशूरा में मौजूद कुछ औरतों का ताअल्लुक़ हज़रत अली[अ॰] के घराने से से था लेकिन कुछ ऐसी औरतें भी थीं जिनका सैय्यदुश शोहदा[अ॰] के साथ कोई ख़ूनी रिश्ता नहीं था। लेकिन ईमान और अक़ीदे का एक ऐसा रिश्ता मौजूद था जिसकी वजह से उन्होंने अपने शौहर और बच्चों को ख़ुशी-ख़ुशी क़ुरबानी के लिए पेश कर दिया और साबित कर दिया कि मुसलमान औरत न सिर्फ़ ये कि अपने प्यारों को ख़ुदा की राह में क़ुरबान कर देने की हिम्मत रखती है बल्कि बहुत शौक़ और जज़्बे से साथ शहादत का सबक़ भी पढ़ाती है। वह अपने हाथों से अपने बच्चों को तैयार करके वक़्त के इमाम की ख़िदमत में भेजती है और उन्हें हक़ के रास्ते पर शहीद होने का शौक़ दिलाती है। उनकी शहादत पर आंसू बहाने के बजाए सब्र का मुज़ाहिरा करती है जो दुनिया की तमाम औरतों के लिए एक नमूना है।

हज़रत ज़ैनब[अ॰] ने करबला में अपने दो बेटे क़ुरबान किए और हैरतअंगेज़ सब्र का मुज़ाहिरा किया। करबला से कूफ़ा, कूफ़े से शाम और शाम से मदीने तक बीबी ने अपने बेटों के लिए कोई आंसू नहीं बहाया। यह वह अकेली औरत थीं जो शहीद की मां, शहीद की बेटी, शहीद की फ़ुफी और शहीद की बहन भी थीं। इन तमाम शहादतों पर जनाबे ज़ैनब[अ॰] का सब्र देखने के क़ाबिल रहा है और आपने सब्र की एक ऐसी ज़िंदा मिसाल क़ायम की जो आने वाली मुसलमान औरतों के लिए हमेशा के लिए नमूना है।

इन्क़ेलाब का पैग़ाम दूसरों तक पहुंचाना

करबला के वाक़ेए के बाद सबसे अहम चीज़ जनाबे ज़ैनब[अ॰] और उम्मे कुलसूम[अ॰] की वह तक़रीरें हैं जो आप दोनों बहनों ने कूफ़ा व शाम के बाज़ारों में की थीं। जनाबे ज़ैनब[अ॰] ने यज़ीद के दरबार में यही तो फ़रमाया था, "ऐ यज़ीद! क्या तू समझता है कि तूने हमें क़ैद करके और यूं दर बदर फ़िरा कर हम को ज़लीलो-ख़्वार किया है और ख़ुद बड़ा बन गया है? ऐ फ़तेह मक्का में आज़ाद होने वाले! तू कोई कसर मत छोड़ और अपनी पूरी कोशिश कर ले लेकिन ख़ुदा की क़सम! तू हमारे ज़िक्र और नाम को मिटा नहीं सकता और न ही हमारे असल मक़सद को कोई नुक़्सान पहुंचा सकता है।"

जनाबे ज़ैनब[अ॰] की यह बात सच साबित हुई और आज करोड़ों दिलों में अहलेबैत[अ॰] की मुहब्बत उसी तरह बाक़ी है और यज़ीद का कहीं नाम तक बाक़ी नहीं है। हुसैन[अ॰] के क़त्ल की क़ीमत इस्लाम की बक़ा और ज़ालिमों के हमेशा के लिए ज़लील होने और मुसलमानों की निजात के सिवा कुछ न थी और इमाम हुसैन[अ॰] का ये मिशन उसी वक़्त पूरा और बाक़ी रह सकता था जब औलादे रसूल क़ैद हो जाए। अगर यह बीबियां गांव-गांव, शहर शहर, दरबारों और बाज़ारों में हुसैनी पैग़ाम को न पहुंचाती तो यह इन्क़ेलाब अपना अज़ीम मक़सद हासिल नहीं कर सकता था।

असीरी के दौरान भी उसूलों और वेल्युज़ की पाबंदी

करबला में मौजूद औरतों ने अपनी सारी अहम ज़िम्मेदारियों को निभाने के साथ-साथ अपने इस्लामी हिजाब और पर्दे का ख़ास ख़्याल रखा था। इससे पता चलता है कि औरतें अपने इस्लामी हिजाब का ख़्याल रखते हुए समाज में अपनी ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह से पूरा कर सकती हैं और उनके बाहर निकलने या बाहर के काम-काज को करने में इस्लाम की तरफ़ से कोई रुकावट नहीं है।

लेकिन शर्त सिर्फ़ यह है कि इस्लामी हदों को मद्देनज़र रखते हुए उनकी पाबंदी की जाए।

करबला के सफ़र में इमाम हुसैन[अ] के साथ जाने वाली औरतें इसका मुंह बोलता सुबूत हैं। उन औरतों के पर्दे के रास्ते में बड़ी-बड़ी रुकावटें खड़ी की गईं लेकिन इन पाकीज़ा औरतों ने हर क़दम पर ज़ालिमों की तरफ़ से ख़ड़ी की जाने वाली रुकावटों का खुल कर मुक़ाबला किया। इसकी कुछ मिसालें ये हैं :-

जनाबे उम्मे कुलसूम जो फ़साहत व बलाग़त में अपनी मिसाल आप थीं, क़ैद के दौरान मुसलसल लोगों को यज़ीद की तरफ़ से ढाए जाने वाले ज़ुल्म के बारे में बताती हैं। असीरों का कारवां, जब कूफ़े में दाख़िल हुआ तो उम्मे कुलसूम ने लोगों को इमाम[अ] का साथ देने में सुस्ती और काहिली पर लानत मलामत की। कूफ़े के लोग जब असीरों का तमाशा देखने जमा हुए तो बीबी कुलसूम ने कहा, "ऐ कूफ़े वालो! क्या तुम्हें ख़ुदा और उसके रसूल[स] से शर्म नहीं आती जो पग़म्बर के घर की औरतों को इस तरह देख रहे हो?"

जब ज़ैनब और उम्मे कुलसूम[अ] की तक़रीरों से कूफ़े के हालात बदलने लगे और ख़ानाजंगी का ख़तरा नज़र आने लगा तो इब्ने ज़ियाद की तरफ़ से हुक्म आया कि क़ैदियों को मस्जिद के क़रीब किसी ख़ाली मकान में नज़रबंद कर दिया जाए।

शाम के बाज़ार में दाख़िल होने से पहले भी बीबी उम्मे कुलसूम[अ] ने शिम्र को यही पैग़ाम दिया कि हमें बाज़ार में ऐसे दरवाज़े से दाख़िल किया जाए जहां देखने वाले कुछ कम हों और शहीदों के सरों को हम से दूर रखा जाए ताकि लोग उन सरों को देखने में मसरूफ़ रहें और हम पर ना महरमों की निगाह न पड़े लेकिन शिम्र ने इसका बिल्कुल उलटा किया और उन्हें उस दरवाज़े से दाख़िल किया जहां लोगों की एक बड़ी तादाद जमा थी।

इसी तरह जब सहल बिन साद को यह एहसास हुआ कि यह क़ैदी आले रसूल[स] हैं तो बीबियों के पास जाकर पूछा कि आप कौन हैं? हज़रत सकीना[अ] ने अपना और इमाम हुसैन[अ] का नाम बताया तो पूछा कि अगर कोई ज़रूरत हो तो फ़रमाईए! मैं आपके जद्द का सहाबी सहल बिन साद हूं। सकीना ने फ़रमाया कि ऐ रसूल के सहाबी! इन से कह दो कि शहीदों के सरों को हमसे दूर रखें ताकि लोग सरों को देखने में मशग़ूल रहें और आले रसूल[स] पर नज़र न डालें। सहल तेज़ी से बढ़े और चार सौ दिरहम देकर शहीदों के सरों को औरतों से दूर करवाया।

औरतों के लिए आशूरा का पैग़ाम

इस्लामी समाज में समाजी ज़िम्मेदारियां सिर्फ़ मर्द के लिए ही नहीं हैं बल्कि औरतों की भी हक़ और बातिल के मामले में कुछ ज़िम्मेदारियां दी गई हैं। उन पर फ़र्ज़ है कि हक़ का डिफ़ेंस करें और बातिल के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाएं और जहां कहीं भी दीन की हिमायत ज़रूरी हो वहां घरों से अपने रहबर की इजाज़त लेकर निकल आएं।

जिस तरह हक़ के रास्ते पर जनाबे ज़ेहरा[अ] ने क़दम-क़दम पर अपने रहबर इमाम अली[अ] की हिमायत की और ज़ैनबे कुबरा[अ] ने अपने ज़माने के रहबर इमाम हुसैन[अ] के साथ क़याम किया।

आशूरा की तहरीक में औरतों का रोल पेश करने के लिए कुछ अहम बातें बयान की जा रही हैं:-

1-सख़्तियों, मुश्किलों और मुसीबतों के मुक़ाबले पर सब्र और हौसले का मुज़ाहिरा।

2-हक़ीक़त को बयान करने में दिलेरी और बहादुरी।

3- सफ़र के दौरान तहरीक के मक़सदों को लोगों तक पहुंचाना।

4- ज़ख़्मियों की मरहम पट्टी और मेडिकल हेल्प।

5- बीवियों और मांओं की तरफ़ से मर्दों को अपने इमाम की हिमायत और इस्लाम की राह में शहीद होने का शौक़ दिलाना और उनकी हौसला अफ़ज़ाई करना। इमाम के डिफ़ेंस में जान को क़ुरबान कर देने की हिदायत जैसे ज़ुहैर बिन क़ैन, मुस्लिम बिन औसजा और उम्मे वहब वग़ैरा।

6- आशूरा के बाद बाक़ी बचे हुए लोगों की हिफ़ाज़त जो बीबी ज़ैनब[अ] ने अंजाम दी जो कि क़ाफ़िले की सालार भी थीं और क़ैदियों की सरपरस्ती उन ही के ज़िम्मे थी।

7- जनाबे ज़ैनब[अ] और उम्मे कुलसूम[अ] की तक़रीरें जिन के ज़रिए लोगों के नज़रिए बदल गए।

8- अहलेबैत[अ] की तरफ़ से की जाने वाली अज़ादारी और गिरयाओ ज़ारी जिसने कूफ़े और शाम के लोगों को रुलाया और उन्हें मजबूर किया कि वह इस तहरीक के बारे में मालूमात करें।

9- क़ैदख़ाने और दुश्मन की निगरानी में भी इस्लामी अहकाम और वेल्युल की रिआयत और अपनी इज़्ज़त की हिफ़ाज़त।

औरतों के लिए आशूरा का पैग़ाम यही है कि औरतें अपनी इज़्ज़त और पाकदामनी की हिफ़ाज़त करते हुए अपनी समाजी ज़िम्मेदारियों को समझें और उन्हें अदा करने के लिए आगे बढ़ें।

या हुसैन

तुम्हारे इश्क़ की दौलत से दिल आबाद करते हैं
तमन्नाओं की दुनिया को ग़मों से शाद करते हैं

हुसैन इब्ने अली तुमने कुछ ऐसी दिलकशी पाई
ख़ुदा को भूलने वाले भी तुमका याद करते हैं

करबला की शहीद दुल्हन

■ सैय्यद ज़फ़र ताज नक़वी

यूँ तो जिस्मानी ऐतेबार से और बहादुरी में आम तौर पर मर्द आगे-आगे नज़र आते हैं लेकिन इसके बावजूद औरतें मर्दों से ज़्यादा सब्र करने वाली होती हैं और लगातार बर्दाश्त करते रहने, छोटे-छोटे परेशान करने वाले हालात और तकलीफ़ों में औरतों की बर्दाश्त करने की ताक़त ज़्यादा होती है।

समाज में औरतों को आम तौर से घरेलू काम-काज के ही लाएक़ समझा जाता है लेकिन दुनिया में ऐसी भी औरतें गुज़री हैं जिनमें घर-ग्रहस्ती के अलावा जंग में बहादुरी के जौहर दिखाने की सलाहियत और वक़्त पड़ने पर जान की बाज़ी लगा देने का जज़बा भी मौजूद था। ख़ास कर वह औरतें जिन्होंने इस्लाम पर बुरा वक़्त आया तो मैदाने जंग में बहादुरी के ऐसे कारनामे अंजाम दिए जो दुनिया की तमाम औरतों के लिए ईसार का सबक़ रखते हैं।

करबला की दास्तान में भी एक ऐसी औरत की शहादत का ज़िक्र मौजूद है जिसकी शहादत को 'वाक़ेए हाएला' के नाम से याद किया जाता है।

जनाबे वहब, अब्दुल्लाह कलबी के बेटे थे और उनकी मां का नाम 'क़मरी' था। एक रिवायत से मालूम होता है कि जनाबे अमीरुल मोमिनीन[अ०] की दुआ से क़मरी को 'दूसरी ज़िंदगी' और वहब सा फ़रमांबरदार बेटा अता हुआ था। इसी तरह जनाबे वहब के वालिद अब्दुल्लाह के दिल में भी जनाबे अमीरुल मोमिनीन अली[अ०] की मुहब्बत कूट-कूट कर भरी हुई थी और आप हज़रत के साथियों में से थे। जनाबे वहब अपनी शादी से जिसे सिर्फ़ दो ही हफ़्ते हुए थे, निपट कर करबला के रास्ते से गुज़र रहे थे कि रात हो गई। वहीं ठहर गए तो दूर से कुछ फ़ौजें खड़ी हुई नज़र आईं। पूछने पर मालूम हुआ कि रसूल[स०] के बेटे, इमाम हुसैन[अ०] दुश्मन के बीच में फ़ंसे हुए हैं। उन्होंने वापस आकर अपनी मां से कहा, "अम्मा! एक अफ़सोसनाक ख़बर लाया हूं। यह फ़ौज जो यहां से मीलों तक नज़र आ रही है, इमाम हुसैन के क़त्ल के लिए जमा हुई है। हमारे आक़ा भूखे और प्यासे हैं और उनके दोस्त अपनी जानों को क़ुर्बान करने के लिए उनके पास जमा हैं और कुछ तो अपनी जानें निसार भी कर चुके हैं। मैं चाहता हूं कि दूल्हा का लिबास उतार के कफ़न पहन कर अब शहादत को गले लगा लूं। आपकी क्या राय है?" ममता की मारी वहब की मां ने एक बार प्यार से बेटे की तरफ़ देखा मगर हुसैन[अ०] की मुहब्बत से दिल लबरेज़ था। इसलिए दिल में बेटे की मुहब्बत की कोई हक़ीक़त न रही। वहब से कहा, "बेटा! क्या कह रहे हो? अफ़सोस! यह क्या सुन रही हूं। हुसैन[अ०], नबी का लख़्ते जिगर, अली[अ०] का नूरे नज़र, फ़ातिमा[अ०] का राहते जां, अल-अमान, अल-अमान! दुश्मनों के नरग़े में? बेटा! चल यहां से! मुझे भी ले चल और अपनी दुल्हन को भी। अब इज़्ज़त, ग़ैरत, आबरू हम से कोसों दूर है। मौत और सिर्फ़ मौत अब हमें आक़ा हुसैन[अ०] की मदद से रोक सकती है। मैं बूढ़ी ज़रूर हूं मगर अपना सर उन मुबारक क़दमों पर निसार करने को ज़िंदगी का अज़ीम मक़सद समझती हूं।"

यह सुनते ही वहब अपनी मां और दुल्हन को लेकर चले और ख़ेमों के पास आकर दम लिया। हज़रत[अ०] के दोस्तों ने इस्तेक़बाल किया। वहब की मां और बीवी ने अपने सर को इमाम[अ०] के क़दमों पर डाल दिया। वहब ने नालैने मुबारक के बोसे लेना शुरू किए और तीनों ख़ूब रोए। हज़रत[अ०] ने सब्र करने को कहा और हाल पूछा। बूढ़ी मां ने कहा, "मेरे मां-बाप आप पर क़ुरबान! मैं आप के वालिद के जांनिसार सहाबी अब्दुल्लाह की बीवी हूं। यह मेरा बेटा वहब और यह उसकी दुल्हन है। इनकी शादी करके यहां से गुज़र रही थी कि आप की यह मुसीबत मुझसे देखी न गई। अब हमें अपना फ़िदया समझिए। हम दोनों आपकी कनीज़ें और यह ग़ुलाम है। अगर आप पर हमला हो तो बारी-बारी आप पर निसार हों।"

इमाम[अ०] यह सुनकर ख़ुद भी रोने लगे और दूसरे तमाम लोग भी। फिर इमाम[अ०] ने फ़रमाया, "तुम दोनों मां-बेटी ज़ैनब और उम्मे लैला के पास ख़ेमे में जाओ।"

वहब ने इमाम[अ०] की ख़िदमत में अर्ज़ की, "मौला! मुझसे मौत का इन्तिज़ार नहीं हो सकता। मेरे दिल में तमन्ना है कि अब तक जो शहीद हो चुके हैं उनके बाद सबसे पहले मुझे इजाज़त अता हो। जितनी देर से मैं हाज़िर हुआ हूं, उसने मुझे उन तमाम बहादुरों से हमेशा के लिए शरमिंदा कर दिया है जो मुझसे पहले आप पर निसार हुए हैं।"

हज़रत ने वहब को जंग की इजाज़त दी। वहब मैदान में आए तो यज़ीदी फ़ौज में से एक शख़्स बढ़ा और वहब से कहा, ''क्या हुसैन[अ०] के लश्कर में कोई जांबाज़ बाक़ी नहीं था जो तुम जैसे नौजवान और नए दूल्हा को मैदान में भेज दिया है?'' वहब ने कहा, ''लानत हो तुम पर, तुम में किसी बुर्ज़ुग का एहतेराम बाक़ी नहीं रह गया है। फ़रज़ंदे रसूल के साथ जो सुलूक तुम कर रहे हो, उसका अंजाम अच्छा नहीं है। आज हम मौत को गले लगाकर इतनी राहत से सोंएगे कि हश्र के दिन जागेंगे। यह कहकर वहब ने ऐसा दिलेराना हमला किया कि हर तरफ़ अल-अमान, अल-अमान की आवाज़ें बुलंद होने लगी। वहब ख़ेमे पर आए और मां के क़दमों पर गिर कर कहा, ''क्यों अम्मा! अब तो आप मुझसे ख़ुश हैं?'' जवाब में मां ने कहा, ''मेरे नूरे नज़र! मुझे क्या ख़ुशी होगी जब यह देख रही हूं कि तुम मैदान से वापस चले आए हो। मुझे हक़ीक़ी ख़ुशी उस वक़्त होगी जब तुम्हारी वापसी के ख़्याल से भी बेख़ौफ़ हो जाऊं और यह उस वक़्त हो सकता है जब तुम्हारा जिस्म मैदान में ख़ूनी क़फ़न में पड़ा हो और तुम्हारा सर मेरी गोद में आख़िरी दीदार के लिए भेजा जाए।''

अब मौक़ा पाकर वहब की दुल्हन आगे बढ़ी और कहा, ''मुझे इमाम[अ०] की नुसरत में आपकी शहादत का ऐसा ही यक़ीन है जिस तरह ख़ुदा की मौजूदगी और अपनी और सबकी की मौत का।'' यह सुनकर वहब दोबारा मैदाने जंग में जाने की तैयारी करने लगे और जाने से पहले अपनी दुल्हन के साथ इमाम[अ०] के पास पहुंचे। इमाम[अ०] से वहब की ज़ौजा ने अर्ज़ की, ''ऐ मौलाए दो जहां! वहब मुझे छोड़े जाते हैं। मैं आज करबला के बन में हमेशा के लिए बेवा हो रही हूं। यह शिकायत नहीं बल्कि मेरे लिए फ़ख़्र की बात है मगर हुज़ूर[अ०] की गवाही में, मैं इनसे यह वादा लेना चाहती हूं कि जिस तरह यह और मैं इस वक़्त आप[अ०] की ख़िदमत में हाज़िर हुए हैं इसी तरह मुझ ग़म-नसीब का हाथ अपने हाथ में लिए हुए, वहब जन्नत में दाख़िल हों। दूसरी गुज़ारिश यह है कि मेरे वालीयो वारिस मौत के शौक़ में फिर से मैदान की तरफ़ जा रहा है। आप[अ०] मुझे अली अकबर[अ०] की मां की ख़िदमत में कनीज़ बनाकर भेज दें।'' इमाम हुसैन[अ०] ने रोते हुए फ़रमाया, ''वहब के साथ बेहिशत में तुम्हारे दाख़िले का मैं ज़िम्मेदार हूं और अपनी शहादत से पहले तुम्हारा हाथ उम्मे लैला के हाथ में देकर मैदान में जाऊंगा।''

वहब ने अपनी दुल्हन से पूछा कि और कोई बात तो नहीं कहना है? उस नेक बीवी ने कहा, ''मैं तुम्हारी शहादत के लिए दुआ मांगूंगी और इस शादी की हक़ीक़ी ख़ुशी जब होगी जब तुम अपनी शादी का जोड़ा शहादत के ख़ून से रंगीन करके मैदान में गिरोगे और मैं तुम्हारी लाश खेमे में आने पर एक-एक बीबी से सुरख़ुरू होकर पुरसा लूंगी। वहब ने इमाम[अ०] के क़दम आख़िरी बार चूमे और अपनी दुल्हन से आख़िरत में मुलाक़ात का वादा करके घोड़ा दौड़ा कर दुश्मन की फ़ौज में दाख़िल हो गए और ज़बरदस्त जंग शुरू कर दी।

वहब ने तक़रीबन 40 दुश्मनों को मार गिराया लेकिन इसी बीच एक कूफ़ी ने कमीनगाह से हमला करके वहब के दाएं हाथ पर वार किया और दूसरे आदमी ने बाएं हाथ को काट दिया। अब वहब बेहाथ होकर रह गए। वहब की बीवी जो यह मंज़र खेमे से देख रहीं थी, अचानक एक ख़ेमे की लकड़ी लेकर अपने शौहर के क़रीब पहुंची और ललकार कर कहा, ''इमाम[अ०] की मदद में जो कुछ हो सके किए जाओ।''

वहब ने चिल्लाकर कहा, ''तुम मैदान में क्यों निकल आईं?'' वहब की बीवी ने जवाब दिया, ''इन ज़ालिमों के हाथों गिरफ़्तार होने पर अपनी मौत को ज़्यादा पसंद करती हूं।'' इस दौरान मौक़ा पाकर एक दुश्मन ने वहब के सर पर ऐसा गुर्ज़ मारा कि वह घोड़े से गिर कर शहीद हो गए। वहब की बीवी यह देखकर फ़ौज में घुस गई। यह देखकर शिम्र ने एक आदमी को आवाज़ दी जिसने इशारा पाते ही एक लोहे का गुर्ज़ इस मज़लूमा के सर पर मार दिया और वह चकरा कर अपने शौहर की लाश पर गिर पड़ीं। इस तरह यह दुल्हा-दुल्हन एक साथ जन्नत को सिधार गए।

तारीख़ में है कि यही पहली औरत थीं जो मैदाने करबला में शामियों के हाथों शहीद हुईं। करबला की तारीख़ का यह ऐसा वाक़ेआ है कि जिससे दिल पाश-पाश हो जाता है और ओखें नम हो जाती हैं।

वहब की बीवी की शहादत हमें सबक़ देती है कि औरत, मर्द को शहादत की बुलंदियों पर भी पहुंचा सकती है और ख़ुद भी उस मरतबे तक पहुंच सकती है। वहब की बीवी ने बड़े बुलंद हौसले के साथ अपने आपको दीने इस्लाम पर क़ुरबान कर दिया और उस मां का ईसार भी देखने वाला है कि जिसने फ़रज़ंदे रसूल[अ०] की मुहब्बत में अपने जवान बेटे को क़ुरबान कर दिया। इस वाक़ेए में एक ऐसे फ़रमांबरदार बेटे का भी ईसार और मां की इताअत का अहम पहलू मौजूद है जिसने अपनी मां के एक हुक्म पर बग़ैर किसी बहाने के अपने आपको दीन की राह में क़ुरबान कर दिया।

आज के ज़माने में वहब की बीवी की शहादत तमाम मांओं और बहनों के लिए नमूनए अमल है।

इमाम हुसैन अ०

करबला और हम

■ अब्बास असग़र शबरेज़

करबला के बारे में अलग-अलग नज़रिये पाए जाते हैं जिनमें से एक यह भी है कि यह वाक़ेआ सिर्फ़ उसी ज़माने से जुड़ा हुआ नहीं है जिसमें इमाम हुसैन अ० ज़िंदगी गुज़ारते थे क्योंकि अगर ऐसा होता तो यह वाक़ेआ उसी ज़माने में ख़त्म होकर रह गया होता। जबकि इमाम हुसैन अ० ने करबला में अपना क़दम इमाम और दीनी रहबर की हैसियत से उठाया था। इसलिए यह मूवमेंट सिर्फ़ एक हुसैनी मूवमेंट नहीं है बल्कि इस्लामी मूवमेंट है और न सिर्फ़ इस्लामी मूवमेंट है बल्कि एक ऐसा मूवमेंट है जो रहती दुनिया तक तमाम इंसानों को अपने अंदर समेटे हुए है क्योंकि इस्लाम तो आया ही इसलिए था कि इंसान अपनी इस इंसानियत को सामने रखते हुए ज़िंदगी गुज़ारे जिसको ख़ुदा ने उसके वुजूद में रखा है।

इसलिए जहां-जहां इस्लाम होगा वहां-वहां हुसैन अ० भी मौजूद होगें और इसी तरह जहां-जहां मुसलमान बल्कि इंसान और उनकी मुश्किलें व मसले होगें वहां-वहां हुसैन अ० भी नज़र आएंगे।

लेकिन एक बार फ़िर यह सवाल अपना सर उठाता है कि हर साल इतने बड़े पैमाने पर सारी दुनिया में हुसैन अ० का ग़म मनाया जाता है, आख़िर क्यों? क्या यह इसलिए कि यह एक तारीख़ी वाक़ेआ है और हमारे एक दीनी रहबर से जुड़ा हुआ है। इसलिए हमारा फ़र्ज़ है कि हम इसको ज़िन्दा रखें? अगर यही मक़सद है तो इससे हमारी ख़ुद की ज़िन्दगी और हमारे समाज को इससे किया फ़ायदा पहुंच रहा है?

या फ़िर इमाम हुसैन अ० पर हम इसलिए गिरया व ज़ारी करते हैं ताकि इसके ज़रिए इमाम हुसैन अ० और अहलेबैब अ० से अपनी मुहब्बत को बाक़ी रखें। मुमकिन है ऐसा ही हो और अगर ऐसा है तो इससे सिर्फ़ इतना ही फ़ायदा होगा कि हमारा दिल तो ग़मगीन होगा लेकिन हमारी ज़िंदगी पर कोई असर नहीं पड़ेगा। अगर वाक़ई यही मक़सद है तो दुनिया का हर समझदार इंसान हमारी इस नादानी पर क़हक़हे लगाएगा कि आख़िर यह कैसी मुहब्बत है जिसका सारा दारोमदार आंसू बहाने और रोने पर है, यह कैसी मुहब्बत है कि महबूब के बयान किये हुए मक़सद को भुला दिया गया है और सिर्फ़ उसकी मज़लूमियत पर आंसू बहाए जा रहे हैं। यक़ीनन हमारे इन आंसुओ का अपना एक मक़ाम है और बुलंद मक़ाम है, यह बात हदीसों से भी साबित है लेकिन हुसैन के मकसद को भुला कर सिर्फ़ आंसू? शायद नहीं क्योंकि इमाम हुसैन अ० ने मदीने से करबला के दरमियान जगह-जगह अपनी इस तहरीक के मक़सद को साफ़ तौर पर बयान किया है।

एक मक़ाम पर फ़रमाते हैं, "ऐ लोगो! रसूले अकरम स० ने फ़रमाया है कि अगर कोई शख़्स अपनी रफ़्तार व गुफ़्तार के ज़रिए एक ऐसे ज़ालिम हाकिम की मुख़ालिफ़त न करे कि जो ख़ुदा की हराम की हुई चीज़ों को हलाल कर रहा हो, जिसने अहदे ख़ुदावन्दी को तोड़ दिया हो, ख़ुदा के बंदों के साथ ज़ालिमाना रवैय्या रखता हो तो ख़ुदावन्दे आलम ऐसे शख़्स को यक़ीनन उसी ज़ालिम हाकिम के साथ महशूर करेगा।" (2)

इमाम हुसैन अ० ने अपना यह जुमला रसूले ख़ुदा की पैरवी करते हुए इरशाद फ़रमाया है

क्योंकि रसूले ख़ुदा(स) फ़रमाते हैं कि अगर समाज में इस्लामी एहकाम राएज न हों और हाकिम, ग़ैर इस्लामी एहकाम को समाज पर थोप रहा हो तो समाज के अफ़राद पर वाजिब है कि समाज को इस हालत से बाहर निकालें क्योंकि अगर रिआया अपने इस ज़ालिम हाकिम से राज़ी रहेगी तो उसका शुमार भी उसी हाकिम के साथ किया जाएगा।

इमाम हुसैन(अ) की हमेशा यह कोशिश रही कि समाज के अंदर इतनी सलाहियत पैदा कर दें कि वह इस ज़माने में मौजूद ग़ैर इंसानी हालात को इस्लाम के मद्दे मुक़ाबिल रख कर जुदा कर सकें।

क्या आज ऐसा नहीं हो रहा है? आज जितने क़ानून बनते हैं सब ग़रीबों के लिए, इंसानी हुक़ूक़ के नारे लगाए जाते हैं मगर सिर्फ़ ग़रीब तबक़े को कुचलने के लिए, तहज़ीब का दम तो भरा जाता है मगर सिर्फ़ सरमायादाराना सिस्टम को ताक़त देने के लिए, इस्लामी मुमलकतें तो हैं लेकिन आज बैतुल माल का जो मसरफ़ है क्या इस्लाम इस मसरफ़ का क़ायल है?

इमाम(अ) फ़रमाते है, "मैं फ़ितना-फ़साद और बुराईयां फैलाने के लिए क़याम नहीं कर रहा हूं बल्कि मैं अपने नाना की उम्मत को सुधारना चाहता हूं। मैं अच्छाईयों को बताना और बुराईयों से रोकना चाहता हूं और लोगों को अपने नाना और बाबा की सीरत पर चलाना चाहता हू।"(3)

आप के इस तारीख़ी जुमले से ख़ुद बख़ुद साफ़ हो जाता है कि आप का मक़सद ज़ाती मसले और मुश्किलें नहीं थीं बल्कि आपका मक़सद समाज की इस्लाह था। आपने यज़ीद के साथ ज़ाती दुश्मनी की वजह से जंग नहीं की थी बल्कि यज़ीद से आपकी जंग हक़ व बातिल के दरमियान जंग थी। आपका मक़सद समाज में इंसाफ़ बरपा करना और समाज को जुल्म व जोर से पाक करना था।

एक दूसरी जगह बड़ा ख़ूबसूरत जुमला इरशाद फ़रमाया है, "अगर तुममे से कोई बुराई होते देखे तो अगर उसके लिए मुमकिन हो तो उसे अपने हाथ से रोके और अगर हाथ से न रोक सकता हो तो ज़बान से रोके और यह भी न कर सकता हो तो अपने दिल में उससे बेज़ारी रखे तो भी उसके लिए काफी है ख़ुदा उसका शुमार बुरे लोगों में नहीं करेगा।"

इमाम हुसैन(अ) ने अपने इस इरशाद के ज़रिए हमारी ज़िम्मेदारी साफ़ तौर पर बयान फ़रमा दी है। इमाम हुसैन(अ) ने करबला के ज़रिए सारी दुनिया तक यह पैग़ाम पहुंचा दिया कि जहां कहीं भी जुल्म होता देखो ख़ड़े हो जाओ। रहबराने क़ौम की ज़िम्मेदारी है कि अगर समाज में एख़्लाक़ी

पस्ती, फ़साद, जुल्म, ग़ैर इस्लामी रुसूमात व अफ़कार राएज होते देखें तो समाज की हालत में बदलाव के लिए आगे बढें। यह उनका शरई फ़रीज़ा है।

इमाम हुसैन(अ) ने कल यज़ीद जैसे फ़ासिक़ व फ़ाजिर से मुक़ाबला किया था और उसके शाही महल की बुनयादों को हिला कर नेस्तो नाबूद कर दिया था। आज हमारा मुक़ाबला दुनिया की साम्राजी ताक़तों से है। आज उन कुव्वतों का पहला व आख़िरी मक़सद यह है कि दुनिया से ख़ुदा ना ख़्वास्ता इस्लाम का सफ़ाया कर दें वरना कम से कम इतना तो कर ही दें कि बक़ौल इमाम ख़ुमैनी(र) दुनियां में सिर्फ़ "अमेरिकी इस्लाम" बाक़ी रह जाए, इस्लामे मोहम्मदी का कहीं नामो निशान बाक़ी न रहे और इसी लिए हमारा दुश्मन आज से नहीं बल्कि सैकड़ो साल से हमारे ख़िलाफ़ जंग की तैयारियों में लगा हुआ है। काफ़ी हद तक अपने मक़सद में कामयाब भी रहा है, क्यों? क्या इस्लाम नाक़िस मज़हब है? क़तअन नहीं। हर मुसलमान यही जवाब देगा कि इस्लाम एक मुकम्मल और कामिल तरीन मज़हब है जो क़यामत तक के इंसानों की हिदायत के लिए भेजा गया है, फ़िर क्या वजह है? एक ही सूरत बचती है कि हम बराए नाम ही मुसलमान रह गए हैं। हम मुसलमान तो हैं लेकिन इस्लाम से हज़ारों कोस दूर।

आज चारो तरफ़ मुसलमानों पर हमले किए जा रहे हैं। कभी उनको अन्कल्चरर्ड क़ौम कहा जाता है और कभी पिछड़ी क़ौम। साम्राजी ताक़तें आए दिन किसी न किसी इस्लामी मुल्क पर हमला कर देती हैं यही ईराक़ जहां आज से चौदह सौ साल पहले वाक़ेअए करबला रुनुमा हुआ था, आज अमेरिका के चंगुल में फंसा हुआ है लेकि कौन है जो अमेरिका की आंखों में आंखे डाल कर अमेरिका से गुफ़्तगू करे। हुसैन(अ) की मज़लूमियत तो यही थी कि वह आलमे इंसानियत का मज़लूम तरीन इंसान था, दूसरी मज़लूमियत यह है कि जिन मक़सदों के तहेत हुसैन(अ) ने अपना घर लुटा दिया, आज उन मक़ासिद को भुला दिया गया है। हुसैन(अ) की इससे बड़ी मज़लूमियत और क्या होगी? क्या हुसैन(अ) हमारी अशक रेज़ी के मोहताज हैं? बिल्कुल नहीं। रिवायात में जहां भी अशक रेज़ी या अज़ादारी के लिए ताकीद की गई है वह इसलिए कि वाक़ेए करबला बाक़ी रह सके और हमें अपनी तरफ़ मुतवज्जेह करता रहे। ऐसा न हो कि हम ग़फ़लत का शिकार हो कर रहा जाएं और वाक़ेए करबला तारीख़ का एक जुज़ बन जाए।

वाक़ेए करबला को ज़िन्दा रखने की ताकीद सिर्फ़ इसलिए की गई है कि हम इस तारीख़ी वाक़ेए से सबक़ हासिल कर सकें। अपनी ज़िन्दगी को हुसैनी बना सकें। अगर जुल्म होता देखें तो जुल्म की आंखों में आंखें डाल कर उससे बातें करें।

आज एक बार फिर ज़रूरत है कि करबला की तारीख दोहराई जाए। बल्कि यह ज़रूरत तो हर ज़माने में रही है। करबला के वाक़ेए के बाद इमाम ख़ुमैनी(र) ने इस वाक़ेए को सही तौर पर समझा था और वह सब कुछ कर दिखाया जो आम इन्सानों के लिए क़रीब-क़रीब नामुमकिन सा था। ईरान के इस्लामी इन्क़ेलाब की बुनयाद ही आशूरा पर रखी गई थी। तभी तो इमाम ख़ुमैनी(र) ने फ़रमाया था, "हमारे पास जो कुछ है वह सब आशूरा की देन है।"

आज हमारी सबसे बड़ी मुश्किल और मसला यूनिटी है। अगर दुश्मन यूनाइट हो सकते हैं तो क्या हम ऐसा नहीं कर सकते। अल्लामा इक़बाल के मुताबिक़:

हरम पाक भी, अल्लाह भी, क़ुरआन भी एक
क्या बड़ी बात थी होते जो मुसलमान भी एक

काश! अगर हम ने वाक़ेए करबला को सामने रखा होता तो आज न कहीं जुल्म होता और न ज़ालिम। सारा समाज हुसैनी समाज होता लेकिन हुसैन आज भी मज़लूम है, आज भी हुसैन की आवाज़ गूंज रही है कि है कोई जो मेरी मदद करे मगर कोई लब्बैक कहने वाला नहीं है। ●

करबला: अक़ीदे और अमल में तौहीद की निशानियाँ

■ हुज्जतुल इस्लाम जवाद मुहद्दिसी

तौहीद का अक़ीदा एक मुसलमान के सिर्फ़ ज़ेहन और सोच पर अपना असर नहीं छोड़ता है बल्कि यह अक़ीदा उसकी ज़िंदगी के हर हिस्से पर अपना असर डालता है। ख़ुदा कौन है? कैसा है? और उसकी मारेफ़त यानी पहचान एक मुसलमान की ज़ाती और समाजी ज़िंदगी पर क्या असर डालती है?

हर इंसान के लिए ज़रूरी है कि उस ख़ुदा पर अक़ीदा रखे जो सच्चा है और जो अपने वादों से नहीं फिरता, वह ख़ुदा जिसकी इताअत हम सब पर फ़र्ज़ है और जिसकी नाराज़गी जहन्नमी बना देती है, वह ख़ुदा जो हर हाल में इंसान पर नज़र रखने वाला है जिससे इंसान का छोटे से छोटा काम भी छिपा हुआ नहीं है। यह सब अक़ीदे जब 'यक़ीन' के साथ पैदा होते हैं तो एक इंसान की ज़िंदगी में सबसे ज़्यादा असर डालते हैं। तौहीद का मतलब सिर्फ़ एक नज़रिया नहीं है बल्कि 'इताअत में तौहीद' यानी सिर्फ़ एक ख़ुदा का हुक्म मानना और 'इबादत में तौहीद' यानी सिर्फ़ एक ख़ुदा की इबादत करना है।

इमाम हुसैन[अ०] को पहले ही से अपनी शहादत के बारे में पता था। पैग़म्बरे इस्लाम[स०] ने भी आपकी शहादत की पेशेंगोई कर दी थी लेकिन उस इल्म और पेशेंगोई ने इमाम के इन्क़ेलाबी क़दम में कोई मामूली सा असर भी नहीं डाला और शहादत के इस मैदान में क़दम रखने से आपके क़दमों में ज़रा भी लरज़ा और शक पैदा नहीं हुआ बल्कि इसकी वजह से इमाम के अंदर शहादत का शौक़ और बढ़ गया। इसी ईमान और ऐतेक़ाद के साथ करबला आए और जिहाद किया और आशिक़ाना अंदाज़ में ख़ुदा के दीदार के लिए आगे बढ़े।

कई मौक़ों पर आपके सहाबी और रिश्तेदारों ने ख़ैर-ख़्वाही और हमदर्दी के जज़्बे में आपको ईराक़ और कूफ़े जाने से रोका और कूफ़ियों की बेवफ़ाई और आपके वालिद और भाई की मज़लूमियत और तन्हाई को याद दिलाया। यूं तो यह सब चीज़ें अपनी जगह एक आम इंसान के दिल में शक पैदा करने के लिए काफ़ी हैं लेकिन इमाम हुसैन[अ०] मज़बूत अक़ीदे, पक्के ईमान और अपनी तहरीक के ख़ुदाई होने के यक़ीन की वजह से ना-उम्मीदी और शक पैदा करने वाली चीज़ों के मुक़ाबले में डट कर ख़ड़े रहे। आप ख़ुदा की मर्ज़ी को हर चीज़ पर भारी समझते थे। जब इब्ने अब्बास ने आपसे दरख़्वास्त की कि ईराक़ जाने के बजाए किसी दूसरी जगह चले जाईए और बनी उमय्या से टक्कर मत लीजिए तो इमाम हुसैन[अ०] ने बनी उमय्या के मक़सद और इरादों की तरफ़ इशारा करते हुए फ़रमाया था, "मैं वही कर रहा हूं जो रसूल[स०] ने करने का हुक्म दिया है और हम तो ख़ुदा ही के लिए हैं और उसी की तरफ़ पलटने वाले हैं।"

और यूं आपने रसूल अल्लाह[स०] की पैरवी और ख़ुदा की तरफ़ पलटने की तरफ़ अपने पक्के इरादे को ज़ाहिर कर दिया क्योंकि आपको अपने रास्ते के सही और ख़ुदा के वादों के बरहक़ होने

का पूरा पूरा यक़ीन था।

'यक़ीन' दीने ख़ुदा और शरीअत के हुक्म पर पक्के अक़ीदे का नाम है। यक़ीन जिसके पास भी हो उसको पक्के इरादे वाला और बेबाक बना देता है आशूर का दिन यक़ीन का दिन था। अपने रास्ते की हक़्क़ानियत का यक़ीन, दुश्मन के बातिल होने का यक़ीन, क़यामत के बरहक़ होने का यक़ीन, मौत के बरहक़ होने और ख़ुदा से मुलाक़ात का यक़ीन, सारी चीज़ों के सिलसिले में इमाम और आपके सहाबियों के दिलों में पूरा यक़ीन था और यही यक़ीन उनको अपने चुने हुए रास्ते पर चलते रहने और आगे बढ़ते रहने पर उकसाए हुए था।

'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैही राजिऊन' किसी इंसान के मरने या शहीद होने के मौक़े पर कहने के अलावा इमाम हुसैन[अ०] की लॉजिक के हिसाब से काएनात की एक बुलंद हिकमत को याद दिलाने वाला है और वह हिकमत यह है कि इस काएनात की शुरूआत और इसका अंजाम सब कुछ ख़ुदा की तरफ़ से है। आपने करबला पहुंचने तक बार-बार इस कलमे को दोहराया ताकि यह अक़ीदा हर एक के इरादे और अमल को ख़ुदा की इस राह में मज़बूत से मज़बूत बना दे।

आपने मक़ामे तलबिया पर मुस्लिम और हानी की शहादत की खबर सुनने के बाद दोबारा इन कलिमात को दोहराया और फ़िर उसी जगह पर ख़्वाब देखा कि एक सवार यह कह रहा है कि "यह कारवां तेज़ी के साथ आगे बढ़ रहा है और मौत भी तेज़ी के साथ उनकी तरफ़ बढ़ रही है" जब आप जागे तो ख़्वाब का माजरा अली अकबर को सुनाया तो उन्होंने आपसे पूछा, "बाबा! क्या हम लोग हक़ पर नहीं हैं?" आपने कहा, "हा! हम हक़ पर हैं" फिर अली अकबर ने कहा, "फिर मौत से क्या डरना?"

पूरे सफ़र में ख़ुदा की तरफ़ पलटने के अक़ीदे को बार-बार बयान करने का मक़सद यह था कि अपने असहाब और घर वालों को एक बड़ी क़ुरबानी व फ़िदाकारी के लिए तैय्यार करें, इसलिए कि पाक व रौशन अक़ीदों के बग़ैर एक मुजाहिद हक़ के दिफ़ाअ में आख़िर तक साबित क़दम और पाएदार नहीं रह सकता है।

करबला वालों को अपनी राह और अपने मक़सद की भी शनाख़्त थी और इस बात का भी यक़ीन था कि इस मरहले में जिहाद व शहादत उनका फ़रीज़ा है और यही इस्लाम के नफ़े में उनको 'ख़ुदा' और 'आख़िरत' का भी यक़ीन था और यही यक़ीन उनको एक ऐसे मैदान की तरफ़ ले जा रहा था जहां उनको जान देनी थी और क़ुरबान होना था जब वहब बिन अब्दुल्लाह दूसरी बार मैदाने करबला की तरफ़ निकले तो अपने रजज़ में अपना तआरुफ़ कराया कि मैं ख़ुदा पर ईमान लाने वाला और उस पर यक़ीन रखने वाला हूं।

मदद और नुसरत में तौहीद और फ़क़त ख़ुदा पर भरोसा करना, इस अक़ीदे के अमल पर असर का एक नमूना है और इमाम सिर्फ़ ख़ुदा के लिए निकले थे। न कि लोगों के ख़त और उनकी हिमायत के ऐलान ने आपको मदीना छोड़ने पर मजबूर किया था और न उनकी तरफ़ से आपके हक़ में दिए जाने वाले नारे इसकी वहज बने थे। जब हुर के सिपाहियों ने आपके क़ाफ़िले का रास्ता रोका तो आपने अपने ख़ुत्बे में अपने क़ियाम और बैअत से इंकार और कूफ़ियों के ख़तों का ज़िक्र किया और आख़िर में गिला करते हुए फ़रमाया "मेरा भरोसा ख़ुदा है और वह मुझे तुम लोगों से बेनियाज़ करता है। आगे चलते हुए जब अब्दुल्लाहे मशिरक़ी से मुलाक़ात की और उसने कूफ़ा के हालात बयान करते हुए कहा कि लोग आपके ख़िलाफ़ जंग करने के लिए जमा हुए हैं तो आपने जवाब में फ़रमाया "हसबियल्लाहु वनिअमल वकील"

आशूर की सुबह जब यज़ीदी फ़ौज ने इमाम के ख़ेमों की तरफ़ हमला करना शुरू किया तो उस वक़्त भी आपके हाथ आसमान की तरफ़ बुलंद थे और ख़ुदा से मुनाजात करते हुए यूं फ़रमा रहे थे "ख़ुदाया! हर सख़्ती और मुश्किल में मेरी उम्मीद और मेरी तकियागाह तू ही है, ख़ुदाया! जो भी हादसा मेरे साथ पेश आता है उसमें मेरा सहारा तू ही होता है, ख़ुदाया! कितनी सख़्तियों और मुश्किलों में तेरी दरगाह की तरफ़ रुजू किया और तेरी तरफ़ हाथ बुलंद किए तो तूने उन मुश्किलों को दूर किया।

पैग़ामे आशूरा

1- वतन से जितनी भी मुहब्बत हो, इस्लाम पर वक़्त पड़ जाए तो उसे छोड़ देना चाहिए।

2- मक़सद के लिए हर तरह की क़ुरबानी ज़रूरी है।

3- बराबरी ये है कि ग़ुलाम का सर भी अपने ज़ानू पर रख लिया जाए।

4- बहादुरी, जज़बात पर क़ाबू पाने और जज़बात को ख़ुदा की मर्ज़ी का पाबंद बना देने का नाम है।

5- वफ़ा इसे कहते हैं कि अमान नामा मिले भी तो उसे ठुकरा दिया जाए।

6- क़ुरबानी का मतलब ये है कि जज़बात की क़ुरबानी दी जाए, न कि जज़बाती क़ुरबानी।

7- तबलीग़ का सही तरीक़ा यह है कि दुश्मनों को भी पानी पिला दिया जाए।

8- इस्लामी जिहाद का अंदाज़ यह होता है कि ज़ुल्म की इन्तिहा में भी जंग की शुरूआत न की जाए।

9- दुश्मन लाख सरकशी करता रहे लेकिन अल्लाह के रास्ते की दावत देते रहो।

10- बंदगी की शान यह है कि ख़ंजर के नीचे भी माबूद का सजदा अदा किया जाए।

11- इस्लाम पर सब कुछ क़ुरबान किया जा सकता है मगर इस्लाम को किसी पर क़ुरबान नहीं किया जा सकता।

12- हक़ का परचम हमेशा ऊँचा रहेगा।

13- राहे ख़ुदा में जिहाद करने वालों के लिए मौत शहद से ज़्यादा मीठी होती है।

14- करबला में हुसैन[अ०] दीन बचा कर कामयाब हुए और यज़ीद दीन मिटाने में नाकाम।

15- हुसैन[अ०] के क़ातिल जहन्नमी हैं।

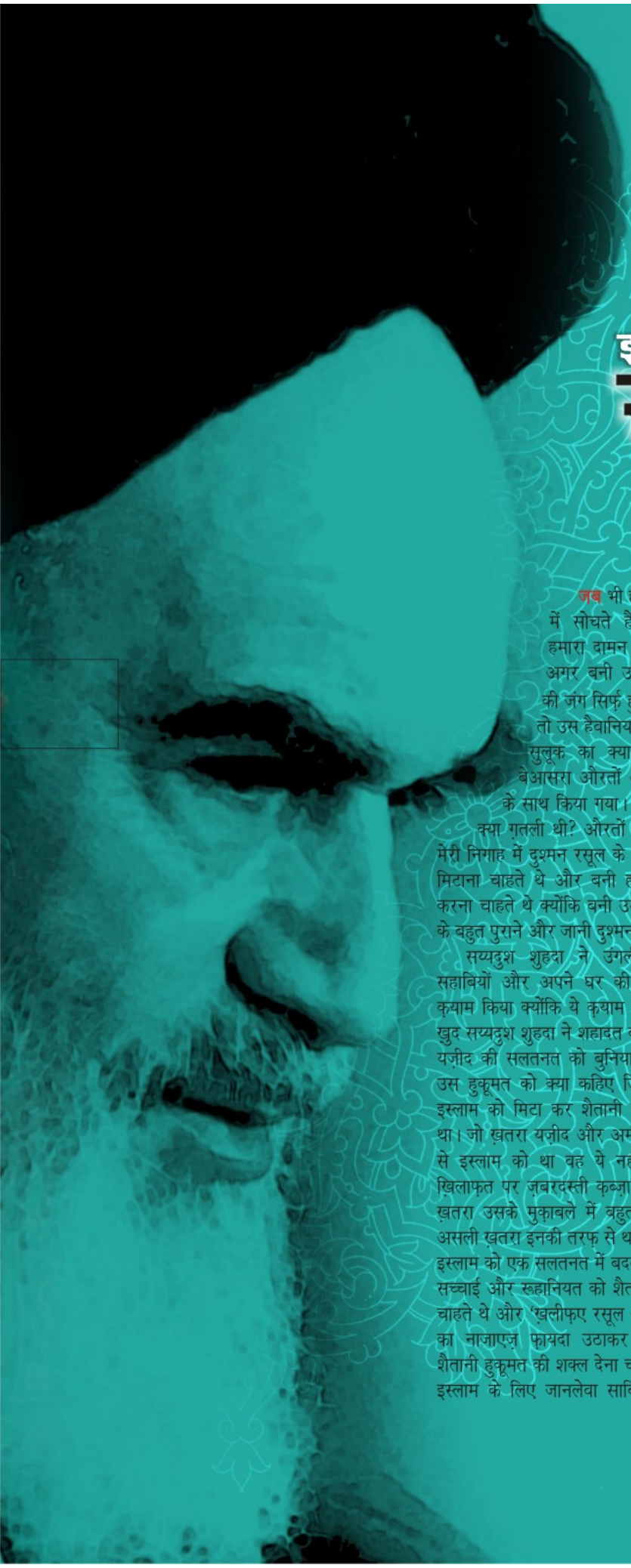

आशूरा

इमाम ख़ुमैनी की नज़र में

जब भी हम आशूरा के बारे में सोचते हैं तो यह सवाल हमारा दामन पकड़ लेता है कि अगर बनी उमय्या और यज़ीद की जंग सिर्फ़ हुसैन[अ०] के साथ थी तो उस हैवानियत और ग़ैर इंसानी सुलूक का क्या मतलब था जो बेआसरा औरतों और मासूम बच्चों के साथ किया गया। दूध पीते बच्चे की क्या ग़लती थी? औरतों का क्या जुर्म था? मेरी निगाह में दुश्मन रसूल के घराने की बुनियाद मिटाना चाहते थे और बनी हाशिम का सफ़ाया करना चाहते थे क्योंकि बनी उमय्या, बनी हाशिम के बहुत पुराने और जानी दुश्मन थे।

सय्यदुश शुहदा ने उंगली पर गिने हुए सहाबियों और अपने घर की औरतों के साथ क़याम किया क्योंकि ये क़याम ख़ुदा के लिए था। ख़ुद सय्यदुश शुहदा ने शहादत का जाम पिया और यज़ीद की सलतनत को बुनियाद से मिटा दिया। उस हुकूमत को क्या कहिए जिसका मक़सद ही इस्लाम को मिटा कर शैतानी हुकूमत में ढालना था। जो ख़तरा यज़ीद और अमीरे शाम की तरफ़ से इस्लाम को था वह ये नहीं था कि उन्होंने ख़िलाफ़त पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर लिया था, ये ख़तरा उसके मुक़ाबले में बहुत मामूली था। जो असली ख़तरा इनकी तरफ़ से था वह ये था कि वह इस्लाम को एक सलतनत में बदलना चाहते थे, वह सच्चाई और रूहानियत को शैतानियत में बदलना चाहते थे और 'ख़लीफ़ए रसूल अल्लाह' के ओहदे का नाजाएज़ फ़ायदा उठाकर इस्लाम को एक शैतानी हुकूमत की शक्ल देना चाहते थे। ये ख़तरा इस्लाम के लिए जानलेवा साबित हो सकता था और इस ख़तरे को इमाम हुसैन[अ०] ने भांप कर दूर कर दिया था। मसला सिर्फ़ ये नहीं था कि ख़िलाफ़त पर क़बज़ा कर लिया गया था बल्कि मसला ये था कि ख़ुदाई हुकूमत की जगह एक शैतानी हुकूमत की बुनियाद डाल दी गई थी।

जैसा कि साफ़ है कि इमामे हुसैन[अ०] अपने शरीअत के फ़रीज़े पर अमल करना चाहते थे, अगर ज़िंदा बच जाते तो शरई हुकूमत के फ़रीज़े को पूरा करते और अगर शहीद हो जाते जैसा कि हुआ भी तब भी अपनी इलाही ज़िम्मेदारी को अंजाम दे चुके थे। असली मसला इलाही फ़रीज़े और ज़िम्मेदारी का था।

हमारे रहनुमा ऐसे रहनुमा हैं जिन्होंने ज़ुल्म और मुसीबत के सामने सब्र का मुज़ाहिरा किया है। हमारे रहनुमाओं ने आशूरा और शामे ग़रीबां जैसे मौक़ों का सामना किया और ख़ुदा की राह में ऐसी अज़ीम मुसीबतों पर सब्र किया।

यज़ीद का जुर्म सिफ़ ये नहीं था कि उसने सैय्यदुश शोहदा को क़त्ल किया बल्कि उसका सबसे बड़ा जुर्म ये था कि उसने इस्लाम को उलट-पलट कर रख दिया था जिसकी वजह से इमाम हुसैन[अ०] को इस्लाम की फरयाद सुनकर आगे आना पड़ा था और आपने[अ०] इस्लाम को निजात भी दिला दी।

मजलिसें इमाम हुसैन[अ०] के मक़सद की हिफ़ाज़त के लिए हैं। वह लोग जो इमाम हुसैन[अ०] की अज़ादारी के ख़िलाफ़ हैं, वह मकतबे इमाम को पहचानते ही नहीं हैं, वह इस बात से बेख़बर हैं कि इन मजलिसों और अज़ादारी ने इस मकतब को ज़िंदा रखा है। चौदह सौ साल से इन ही मिम्बरों, मजलिसों और मातम की वजह से हम ज़िंदा हैं।

अब जबकि मोहर्रम का महीना इस्लाम के

मुजाहिदों, आलिमों, ज़ाकिरों और शियों के बीच आ पहुंचा हैं तो ज़रूरी है इससे ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाया जाए। मोहर्रम यज़ीदी ताक़तों और शैतानी साज़िशों की हार का महीना है। ये मजलिसें जिहालत पर अक़्ल, ज़ुल्म पर इंसाफ़, ख़्यानत पर अमानत और शैतानी हुकूमत पर इलाही हुकूमत की जीत का नाम हैं। यह मजलिसें बड़े एहतेमाम और शानो-शौकत के साथ बरपा होना चाहिएं और आशूरा के ख़ूनी परचम को ज़ालिम से मज़लूम के इन्तेक़ाम की निशानी के तौर पर ज़्यादा से ज़्यादा लहराया जाना चाहिए।

बनी उमय्या इस्लाम को जड़ से मिटा कर अरबों की हुकूमत लाना चाहते थे। इमाम हुसैन[अ०] के इस कारनामे की वजह से सारे मुसलमान समझ गए कि मसला अरब और नॉन-अरब का नहीं है बल्कि मसला ख़ुदा और इस्लाम का है।[1]

सारे नबी और रसूल समाज को सुधारने के लिए आए हैं और सबका नज़रिया ये था कि फ़र्द चाहे जितना भी बड़ा हो, जब समाज के सुधार का मसला सामने हो तो उसको समाज पर फ़िदा होना चाहिए। इसी पैमाने के तहत इमाम ने ख़ुद को और अपने साथियों को समाज की भलाई के लिए क़ुरबान कर दिया।

इस वक़्त हमारे जवानों को बहकाया जा रहा है कि ये गिरया और मजलिसें आख़िर कब तक? यह लोग नहीं समझते कि ये मजलिसें और अज़ादारी इंसान को इंसान बनाने वाली हैं। यहां इंसानों की परवरिश होती है। ये मजलिसें और ज़ुल्म के ख़िलाफ़ ये पैग़ाम असल में साम्राज के ख़िलाफ़ एक प्रोपेगंडा है।

ज़ाकिरों और मजलिसें पढ़ने वालों की ज़िम्मेदारी है कि रोज़ाना के सियासी-समाजी मसलों को बयान करने के बाद मसायब और मरसियों को जिस तरह पहले पढ़ा करते थे उसी तरह पढ़ें और लोगों को ईसार और फ़िदाकारी के लिए तैयार करें।

1.सहीफ़ए नूर, जि० 13, स० 158

क़ाफ़िले से बिछड़ा हुआ

रात के अंधेरे में एक नौजवान की दुख भरी आवाज़ साफ़ सुनाई दे रही थी। उसके मुंह से बार-बार 'अम्मा-अम्मा' की चीख़ निकल रही थी। वह कह रहा था कि कोई उसे उसकी मां के पास पहुंचा दे। अस्ल में उसका बूढ़ा और कमज़ोर ऊंट क़ाफ़िले से बिछड़ गया था। सिर्फ़ यही नहीं बल्कि थोड़ी देर तक चलने के बाद ऊंट थककर चूर हो गया था और काफ़ी कोशिशों के बाद भी वह आगे न बढ़ा। यह देखकर वह नौजवान परेशान हो गया और उसकी समझ में कुछ न आया कि क्या करें। आख़िरकार वह ऊंट की पीठ पर ख़ड़े होकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा। इतने में रसूले ख़ुदा[स०] नें जो हमेशा क़ाफ़िले के पीछे चला करते थे ताकि अगर कोई बूढ़ा और कमज़ोर आदमी क़ाफ़िले से पिछड़ जाए तो वह अकेला और बेसहारा न रह जाए दूर से उस नौजवान की आवाज़ सुन ली। रसूले ख़ुदा[स०] जब उसके क़रीब पहुंच गए तो उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

"मैं जाबिर हूं।"

"तुम इतना डरे हुए और परेशान क्यों हो?"

"या रसूल अल्लाह[स०]! मेरा ऊंट थकावट और कमज़ोरी की वजह से ज़मीन से उठने का नाम ही नहीं लेता और क़ाफ़िला तेज़ी के साथ आगे बढ़ता चला जा रहा है।"

"तुम्हारे पास छड़ी है या नहीं?"

"जी हां, है।"

"लाओ मुझे दे दो!"

इसके बाद रसूल[स०] ने छड़ी से उस ऊंट को हिलाया। ऊंट उठकर खड़ा हो गया। रसूल[स०] ने उसे फिर बिठा दिया और उसकी रकाब अपने हाथों में पकड़ते हुए जाबिर से कहा कि ऊंट पर बैठ जाओ। जाबिर अपने ऊंट पर बैठकर रसूल[स०] के साथ चल पड़े। इस बार जाबिर का ऊंट थोड़ा तेज़ चल रहा था। रसूल[स०] रास्ते में जाबिर से बड़ी मुहब्बत से गुफ़्तगू करते रहे। जाबिर ने अपनी आंखों से देखा कि रसूल[स०] ने लगभग 35 बार ख़ुदा से उनकी बख़्शिश की दुआ मांगी। रास्ते में रसूल[स०] ने जाबिर-इब्ने-अब्दुल्लाह से सवाल किया "तुम कितने बहन-भाई हो?"

"मेरी सात बहने हैं और कोई भाई नहीं है बल्कि मैं अकेला ही हूं।"

"तुमने अपने बाप का सारा क़र्ज़ा अदा कर दिया या कुछ बाक़ी है?"

"नहीं, अभी कुछ लोगों का क़र्ज़ रह गया है।"

"तो फिर मदीने वापस आने के बाद तुम उन लोगों से क़र्ज़ को देने के बारे में बात कर लेना और जब ख़ुर्मा तोड़ने का वक़्त आ जाए तो मुझे बता देना।"

"बहुत अच्छा।"

"क्या तुमने शादी कर ली?"

"जी हां।"

"किस लड़की से शादी की है?"

"मैंने फ़ुलां की बेटी के साथ शादी की है। वह मदीने की बेवा औरतों में से एक हैं।"

"आख़िर तुमने कुंआरी लड़की से शादी क्यों नहीं की?" तुम जैसे कम उम्र नौजवान के लिए कुंआरी लड़की ज़्यादा बेहतर रहती।"

"या रसूल अल्लाह! मेरी कुछ जवान और नातर्जुबेकार बहनें हैं। इसलिए जवान और नातुर्जबेकार लड़की से शादी नहीं की और एक समझदार बेवा औरत से शादी कर ली।"

"यह तो तुमने बहुत अच्छा किया। यह ऊंट कितने रुपये में ख़रीदा है?"

"पांच 'दक़्या तला' में।"

"मेरे पास भी इतनी ही पूंजी है। मदीने आकर तुम इस ऊंट की क़ीमत मुझसे ले लेना।"

सफ़र के बाद सभी लोग मदीने वापस आ गए। जाबिर अपना ऊंट लेकर रसूल[स०] की ख़िदमत में पहुंचे कि उन्हें वह दे दें। रसूल[स०] ने जाबिर को देखते ही बिलाल से कहा, "पांच 'दक़्या तला" जाबिर को दे दो। यह इनके ऊंट की क़ीमत है और तीन 'दक़्या तला' इन्हें और दे दो ताकि अपने बाप अब्दुल्लाह का क़र्ज़ चुका दें। इसके साथ यह ऊंट भी इन्हें वापस कर देना ताकि इसे यह अपने पास ही रखे रहें। इसके बाद रसूल[स०] ने जाबिर से पूछा, "क़र्ज़ मांगने वालों से तुम्हारी कोई बात-चीत हुई या नहीं?"

"नहीं, या रसूल अल्लाह अभी उन लोगों से कोई बात नहीं हो सकी है।"

"तुम्हारे बाप ने जो चीज़ें मीरास में छोड़ी हैं, क्या वह क़र्ज़ अदा करने के लिए काफ़ी नहीं हैं?"

"नहीं वह सब काफ़ी नहीं हैं।"

"ठीक है तो फिर तुम मुझे ख़ुर्मा तोड़ने के मौक़े पर ज़रूर बताना।" कुछ दिनों बाद ख़ुर्मा तोड़ने की फ़स्ल आ गई और जाबिर ने रसूल[स०] को ख़बर कर दी। रसूल[स०] जाबिर के घर तशरीफ़ लाए और सारा क़र्ज़ चुका दिया और कुछ रक़म जाबिर के घर वालों की परवरिश के लिए उन्हें दे दी।

■ शहीद मुतह्हरी

चश्मे तसव्वुर

■ उम्मे अबीहा मसऊद

एक छोटी और बीमार बच्ची आसमान की तरफ़ कुछ देखने की कोशिश कर रही है। शायद चांद को तलाश कर रही है। यह कौन सा चांद है जिसने अपनी आमद से बच्ची को परेशान कर दिया है?

हां! यह मोहर्रम का चांद है। बच्ची ने चांद देखा और अब अपने नन्हे-नन्हे हाथों को बुलंद करके कहा, ''परवरदिगार! इस चांद को मेरे बाबा के लिए मुबारक कर दे। यह महीना ख़ैरियत का महीना बन कर गुज़रे। ऐ अल्लाह! मेरे भाईयों को अपनी हिफ़ाज़त और अमान में रखना। इस घर से जाने वाले मुसाफ़िर ख़ैरियत के साथ वापस आ जाएं।''

ये बच्ची और कोई नहीं बल्कि बीमारे मदीना फ़ातिमा सुग़रा है। सुग़रा ने अपनी दुआ ख़त्म की और कमज़ोरी की वजह से बिस्तर पर लेट गई। इस बच्ची को नहीं मालूम कि मोहर्रम का चांद हर साल आसमान में निकलेगा मगर इसके मुसाफ़िरों को ख़ैरियत के साथ वतन आना नसीब न होगा।

सन् 60 हिजरी के रजब की आज 27 वीं है। मैं तारीख़ लिखने वालों के साथ हैरानो-परेशान खड़ी एक और मंज़र देख रही हूं। मदीने के हाकिम का क़ासिद पैग़ाम लाया है और इस घराने के सरबराह से कह रहा है कि हाकिम ने आपको अभी इसी वक़्त बुलाया है। हुसैन[अ०] नमाज़ पढ़कर अभी-अभी अपने घर में तशरीफ़ लाए हैं। सोच रहे हैं बचपन का वादा पूरा करने का वक़्त आ पहुंचा है। वक़्त उस लम्हे के इन्तिज़ार में है जिसकी पेशिंगोई हज़रत रसूले ख़ुदा[स०] और हज़रत अली[अ०] कर गए हैं।

शमए इमामत पर परवानावार निसार होने वाली बहन, भाई के चेहरे पर हल्का सा बदलाव देखकर बेचैन है। पूछा, ''भाई! ख़ैरियत तो है?''

भाई ने दरबार में बुलाए जाने का वाक़ेआ बयान कर दिया। बहन ने सब्र से सुना। सब्र का यह कमाल उसे विरासत में मिला है। वह ये बात अच्छी तरह जानती है कि सर देना इस ख़ानदान की पहचान और शहादत इसकी मीरास है। उसने तो ये क़यामत का मंज़र भी देखा है कि जब उसके नाना की वफ़ात के बाद उसकी बुलंद मर्तबा माँ फ़ातिमा-ए-ज़हरा के पहलू पर दरवाज़ा गिराया गया और आपके पेट ही में उसके भाई मोहसिन[अ०] की शहादत हुई। वह उस वक़्त को कैसे भूल जाए जब उसने अपने बाबा शेरे ख़ुदा[अ०] को इस हालत में देखा कि इब्ने मुलजिम की ज़हर में बुझी हुई तलवार के वार से उनका सर दो टुकड़ों में बंट गया था और अली[अ०] अपने ही ख़ून में नहाए हुए थे। उसे अपने मेहरबान भाई हसने मुजतबा[अ०] की शहादत और उनके जनाज़े पर तीरों की बारिश का वाक़ेआ भुलाए नहीं भूलता और अब पंजतने पाक[अ०] की इस आख़िरी निशानी का वलीद के दरबार में बुलाया जाना उसे आने वाले वक़्त की ख़बर दे रहा है। दिल में वसवसे उठ रहे हैं। बहन ने एक बार बहुत ग़ौर से अली[अ०] और बतूल[अ०] की यादगार, अपने भाई हुसैन[अ०] को देखा। फिर उसे याद आया कि उसकी मां ने वसीयत की थी कि बेटी! मेरे लाल हुसैन[अ०] को तन्हा न छोड़ना। उसने अपने हिम्मत और इरादों को जमा करके अपने जान से भी ज़्यादा प्यारे भाई से कहा, ''भय्या! मैं आपके साथ वलीद के दरबार में चलूंगी।'' ज़ैनब, भाई के लिए सिर्फ़ बहन ही नहीं, मां की जगह भी हैं। भाई ने कहा, ''बहन ज़ैनब! हुसैन[अ०] तुम पर क़ुर्बान! अभी हुसैन[अ०] ज़िंदा है, अब्बास[अ०] हैं, अली अकबर[अ०] हैं, बनी हाशिम हैं। तुम्हारा दरबार में जाना मुनासिब नहीं है।'' मगर हुसैन[अ०] ज़बाने हाल से कह रहे हैं कि बहन! भाईयों, बेटों, भतीजों के बाद दरबार, बाज़ार और कुर्सी नशीनों के मजमे में तुम्हें ही जाना होगा। ज़ैनब[अ०] की बेचैनी को देखकर हज़रते अब्बास[अ०] ने ज़ैनब[अ०] की ढारस बंधाते हुए कहा, ''आक़ा का ग़ुलाम अब्बास[अ०], आक़ा के साथ जाएगा, परेशान मत होइए।''

मैंने देखा बनी हाशिम के घर में क़यामत का समां है। थोड़ी ही देर में बनी हाशिम के जवान तलवारें सजाए अपने इमाम की ख़िदमत में हाज़िर हैं और इमाम वलीद के बुलावे पर जाते हुए अपने साथ बनी हाशिम के बहादुरों को लेकर जा रहे हैं मगर ये हुक्म देके कि कि तुम सब दारुल अमारा के बाहर ठहरना। मैं अकेला अंदर जाऊंगा। अगर मेरी आवाज़ बुलंद हो जाए तो तुम अंदर आना वरना नहीं। ख़ानदाने बनी हाशिम के सरदार अंदर तशरीफ़ ले गए। वलीद ने ताज़ीम दी, फिर यज़ीद का ख़त पेश किया। इमाम[अ०] ने फ़रमाया, ''बैअत का ऐलान सब के सामने मुनासिब है, न कि छुप

कर रात के इस अंधेरे में। ऐ वलीद! हम ही से ख़ुदा ने इस जहां को पैदा किया और हम ही पर इसका ख़ातेमा होगा। तुम सुबह हो लेने दो फिर देखेंगे कि बैअत और ख़िलाफ़त का कौन ज़्यादा हक़ रखता है।" वलीद ख़ामोश है, हुसैन[अ] उठकर दरवाज़े की तरफ़ बढ़े। मरवान बिन हकम ने कहा कि वलीद! हुसैन[अ] पर क़ाबू पा लो वरना फिर हुसैन[अ] हाथ न आएंगे और बेहतर है सर ही काट लो।

इमाम[अ] ने यह सुना और एक बार मुड़ कर देखा और फिर तेज़ आवाज़ में फ़रमाया, "मेरा सर कौन काट सकता है?" इमाम[अ] की आवाज़ का बुलंद होना था कि बाहर खड़े बनी हाशिम के जवान अंदर दाख़िल हो गए।

आपने निहायत मुहब्बत से उन सबको रोका। ज़म-ज़मो -सफ़ा का वाली, मक्का और मिना का वारिस, अपने किरदार और अमल की बुलंदी और आले रसूल[स] की अज़मत का मुज़ाहिरा करके अपने घर वापस आया तो देखा कि बहन दरवाज़े पर खड़ी इन्तिज़ार कर रही है। तमाम वाक़ेआ बहन को सुनाया। ज़ैनब[अ] सोच ही रही है कि अब इस्लाम पर वह वक़्त आ गया कि हुसैन[अ] और हुसैन[अ] के साथियों को अपना ख़ून पेश करना पड़ेगा।

मैं देख रही हूं कि वह अपने बुज़ुर्ग और बहादुर भाई के इस इरशाद को बहुत ग़ौर से सुन रही है कि अगर मुहम्मदे मुस्तफ़ा[स] का दीन मेरे क़त्ल के बग़ैर बाक़ी नहीं रह सकता तो ऐ तलवारो आओ! मेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालो।

यानी हुसैन[अ] ज़बाने हाल से यह कह रहे हैं कि बेशक मुझ पर हमला कर दो, मुझे जिस तरह चाहो ज़ख़्मी करो, जिस तरह चाहो लहू-लुहान करो मगर मैं चाहता हूं कि दीने मोहम्मद[स] बाक़ी बच जाए।

आप[अ] ने हुक्म दिया कि हालात ख़राब हो चुके हैं इसलिए अमानतें लौटा दो। जिससे मिलना है मिल लो। सुबह से पहले हुसैन[अ] को अपने नाना का मदीना छोड़ना है।

ख़ुद हुसैन[अ] सबसे पहले अपने नाना के रौज़े पर सलाम करने जा रहे हैं। रौज़े की जाली पकड़ कर अर्ज़ की नाना! मक्के वालों ने आपको मक्के से दर बदर किया। अब मदीने वाले आपके हुसैन[अ] को मदीने से निकाल रहे हैं। रोते-रोते हल्की सी नींद आ गई तो ख़्वाब में नाना की ज़ियारत की। हुज़ूर[स] ने अपने हुसैन[अ] को सीने से

लगाया। रुख़सारों को चूमा और फ़रमाया, "मेरे हुसैन[अ]! तुम क्यों रो रहे हो? मेरे नूरे नज़र, मेरी आंखों की ठंडक! तुम जल्दी ही जामे शहादत नोश करने वाले हो।"

नाना के रौज़े से रुख़सत लेकर अपनी माँ की क़ब्र पर आए। "अम्मा! हुसैन आज ग़रीबुल वतन हो रहा है। ऐ अम्मा! मुझे अलविदा कहो। मेरे हक़ में दुआ करो।" इमाम की आंखें अश्कबार हैं कि अचानक मां फ़ातिमा ज़ेहरा[अ] आलमे रूहानियत में फ़रमाने लगीं कि हुसैन! आंसू पोंछ डालो। तुम्हारी आंखों का एक क़तरा भी मेरी क़ब्र पर गिर पड़ा तो अर्श कांप उठेगा।

हुसैन[अ] ने मां का हुक्म सुना। सब्र का दामन थामा और ख़ुदा की मर्ज़ी पर सब्र करके मां को आख़िरी सलाम किया। फिर भाई की क़ब्र से रुख़सत ली। बहन ने हसरत से भाई के चेहरे को देखा और पूछा, "भय्या! क्या बहन को छोड़ कर जाओगे?" फ़रमाया, "बहन! बग़ैर अब्दुल्लाह के पूछे तुम्हें कैसे ले चलूं?" कुछ देर के लिए ज़ैनब[अ] बेचैन हो गईं। "भाई! अगर इजाज़त न मिली तो क्या होगा?" फिर जनाबे अब्दुल्लाह को देखते ही आंसुओं का चढ़ा हुआ दरिया बह निकला। कहा, "आपको मालूम है कि भाई हुसैन[अ] सफ़र के लिए तैयार हैं। आप इजाज़त नहीं देंगे तो बेशक ज़ैनब[अ] नहीं जाएगी मगर फिर ज़ैनब[अ] ज़िंदा भी नहीं रह पाएगी।" जनाबे अब्दुल्लाह ख़ुद भी रो दिए। कहा, "बीबी! आप ज़रूर जाएं। अगर मैं बीमार न होता तो ख़ुद भी चलता।" ज़ैनब[अ] के कुमहलाए हुए चेहरे पर बहार आ गई। बेसाख़्ता भाई के पास आकर कहा, "भय्या! इजाज़त मिल गई है।" भाई ने बहन से कहा, "बहन! हुसैन को तुम्हारी ज़रूरत है। तुम्हीं शहादत के मक़सद को पूरा करोगी।"

तारीख़ लिखने वाला इस अनोखे सफ़र को देख रहा है जिसमें औरतें भी हैं, बच्चे भी हैं, बूढ़े भी हैं, जवान भी हैं। जल्दी से नाक़े बिठाए गए। 28 रजब को यह छोटा सा क़ाफ़िला मदीने से रवाना हुआ। मंजिल बमंजिल सफ़र तय करता हज को उमरे में बदल कर सालबिया पहुंचा।

मर्ज़ीए मौला पर पूरा यक़ीन रखने वाला मुसीबतों से दो चार होता, रास्ते की चट्टानों से टकराता हरीमा तक पहुंचा। यहां बहन ज़ैनब[अ] ने एक ख़्वाब देखा, "कोई कह रहा है, हुसैन[अ] का क़ाफ़िला अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ रहा है।" हैदरे कर्रार[अ] की बेटी के किरदार में मंज़िल

बमंज़िल बुलंदी पैदा होती गई।

दो मोहर्रम को सब्र और शुजाअत का शहंशाह नहरे फ़ुरात के किनारे ख़ेमे लगवा रहा था मगर इब्ने ज़ियाद का हुक्म मिला कि हुसैन[अ०] को ऐसी जगह रोका जाए जहां न पानी हो और न पेड़-पौधे। हुर ने फ़ुरात के क़रीब से ख़ेमे हटाने को कहा। अब्बासे दिलावर[अ०] को जलाल आ गया। जंग की नौबत आती देख इमाम[अ०] ने निहायत मेहरबानी से भाई से सब्र करने को कहा। साक़िए कौसर के बेटे ने दरिया के किनारे से ख़ेमे हटवा कर फ़ुरात से दूर चटयल मैदान में लगवा दिए। सैय्यदा के लाल ने इस मंज़िल पर भी अपनी सुलेहजोई और अच्छे अख़लाक़ का मुज़ाहिरा किया। सातवीं मोहर्रम से छोटे-छोटे बच्चों समेत हुसैन के सारे क़ाफ़िल पर पानी बंद कर दिया गया। देखते ही देखते मैदाने करबला में दुश्मनों का सैलाब उमंड आया। बहत्तर प्यासों के लिए एक बहुत बड़ी फ़ौज जमा थी।

हाए! क़यामत का वह दिन भी आ गया जब न हबीब रहे, न ज़ुहैर और न हानी, न अब्बास[अ०] रहे न अली अकबर[अ०]। अब रुख़सते हुसैन[अ०] की घड़ी है। इमाम[अ०] ने वक़्ते आख़िर सब पर अलविदाई नज़र डाली और जिस पर भी नज़र पड़ी, हुसैन[अ०] को ख़्याल आया कि मेरे बाद इस पर क्या गुज़रेगी। सकीना[अ०] को देखा ख़्याल आया कि बाप के सीने पर सोने वाली आज के बाद गर्म रेत पर सोएगी। उम्मे रबाब और कुलसूम की मुश्कें कसी देखीं। सैय्यदे सज्जाद पर नज़र पड़ी तो हाथों में हथकड़ी और पांव में बेड़ियां नज़र आईं। बहन पर नज़र पड़ी तो बाज़ुओं में रसन बंधी नज़र आई। एक-एक के क़ैद होने का मंजर निगाहों में फिरा। इमाम[अ०] का दिल भर आया। बहन ने भाई के गले का बोसा लिया, भाई ने बहन के बाज़ुओं को चूमा और कहा कि अब तुम सब्र के ज़रिए जिहाद का आग़ाज़ करो। ख़ुदा हाफ़िज़!

रसूल[स०] के कांधों पर सवारी करने वाले का सर कट गया। अहले हरम लूट लिए गए, ख़ैमे जला दिए गए। कोई है जो इन बेवालिओ-वारिस बीवियों को सहारा दे! कोई है जो इन बिलकते बच्चों को दिलासा दे!

तारीख़ लिखने वालों के पास अलफ़ाज़ नहीं हैं। उनके क़लम की रोशनाई ख़ून बन गई है। अब सिर्फ़ रात का अंधेरा है जो बैन कर रहा है, एक बेकसी है जो मातम कर रही है, एक तन्हाई है जो आंसू बहा रही है और एक संनाटा है जो नौहा कुनां है।

अ० हुसैन को दुनिया भूल क्यों नहीं पाती ?

वाक़ेए करबला की अहमियत सिर्फ़ इस वजह से नहीं है कि हर साल मोहर्रम में लाखों-करोड़ों इंसानों के एहसासात ज़िंदा होते हैं बल्कि इसकी अहमियत इस लिहाज़ से है कि इसमें दीनी और इंसानी जज़्बात और एहसासात के अलावा और कुछ शामिल नहीं है और यह हक़ीक़त भी किसी पर छुपी नहीं है कि इस वाक़ेए और अज़ादारी के लिए जो बड़े-बड़े इजतेमा होते हैं इस एतेबार से भी बेमिसाल हैं कि वह किसी क़िस्म के प्रोपेगंडे के मोहताज नहीं हैं।

जो सवाल अभी तक काफ़ी लोगों के लिए साफ़ नहीं हो पाया है, वह यह कि इस तारीखी वाक़ेए को इस क़द्र अहमियत क्यों दी जाती है इसी के जैसे दूसरे वाक़ेआत भी मौजूद हैं?क्या वजह है कि बनी उमय्या जिनको ज़ाहिरी जीत मिली, उनका नाम तक बाक़ी नहीं है?यह सवाल और इनसे मिलते जुलते जवाब, वाक़ेए करबला और उसके मक़सद में ग़ौर करने से बख़ूबी साफ़ हो जाते हैं।

वाक़ेए करबला दो सियासी पार्टियों की या दौलत और जायदाद वग़ैरा हासिल करने पर जंग न थी। यह वाक़ेआ दो नज़रियों की जंग थी या यूं कहें कि हक़ और बातिल की जंग थी जो इंसानी तारीख़ की शुरूआत से चली आ रही थी।

यह बात साफ़ है कि जब पैग़म्बरे अकरम[स०] ने इंसानियत को जिहालत और गुमराही से निजात देने के लिए क़दम उठाया और गुमराही की जंजीरों में जकड़े हुए लोगों को अपने आस-पास जमा किया तो उस वक़्त इस सोशल रिफ़ार्म के मुख़ालिफ़ों ने एक साथ होकर इस आवाज़ को खामोश करने की ख़ातिर अपनी सारी कोशिशें शुरू कर दीं। इन लोगों में सबसे आगे बनी उमय्या थे मगर उनकी सारी कोशिशों के बावजूद इस्लाम की अज़मत के सामने उन्हें मजबूरन घुटने टेकने पड़े और उनकी सारी कोशिशें नाकाम हो गईं।

उनकी नाकामी का मतलब यह नहीं था कि वह पूरी तरह ख़त्म हो गए हों बल्कि जब उन्हें यह यक़ीन हो गया कि ज़ाहिरी तौर पर इस इंक़ेलाब का मुक़ाबला नहीं किया जा सकता तो उन्होंने हर नाकाम और कमज़ोर दुश्मन की तरह अपनी ज़ाहिरी कोशिशों को ख़ुफ़िया तौर पर शुरू कर दिया और मुनासिब वक़्त के इन्तिज़ार में बैठ गए। पैग़म्बरे अकरम[स०] की वफ़ात की बाद बनी उमय्या ने लोगों को जाहिलियत के ज़माने की तरफ़ ले जाने के लिए हुकूमत में घुसने की कोशिश शुरू कर दी और मुसलमान जितना पैग़म्बर[स०] के ज़माने से दूर होते गए, बनी उमय्या के लिए उतना ही मुनासिब मौक़ा मिलता गया। पैग़म्बर[स०] के बाद रिश्तेदारी और क़ौम-क़बीले की बुनियाद पर ओहदे बांटे जाने लगे। इस तरह बहुत से ऐसे लोग हुकूमत में आ गए जो अपने दिल में इस्लाम के लिए दुश्मनी रखते थे और उन्होंने लोगों को जाहिलियत के ज़माने की तरफ़ वापस ले जाने की कोशिशें शुरू कर दीं। यह कोशिशें इतनी तेज़ थी कि हज़रत अली[अ०] जैसी अज़ीम शख़्सियत को भी अपनी खिलाफ़त के दौरान इसी मुनाफ़िक़ों वाले ग्रुप का सामना करना पड़ा। यह साज़िश इतनी खुली हुई थी कि ख़ुद उसके लीडर भी उसके ग़ैर इस्लामी होने पर पर्दा न डाल सके बल्कि उनके अपने बयानों से साफ़ हो जाता है कि उनके मक़सद क्या थे और वह इस्लाम से कितनी मुहब्बत रखते थे।

क्या इमाम हुसैन[अ०] इस खतरे के मुक़ाबले में ख़ामोश बैठ सकते थे? इमाम हुसैन[अ०] ख़ामोश नहीं बैठे बल्कि उन्होंने अपना फ़रीज़ा अंजाम दिया और तारीख़ का रुख़ मोड़ के बनी उमय्या और उनकी ज़ालिमाना कोशिशों को हमेशा के लिए नाकाम बना दिया।

यह है क़यामे हुसैन[अ०] की हक़ीक़त और यहीं से इस सवाल का जवाब भी साफ़ हो जाता है कि हुसैन[अ०] का नाम और करबला की तारीख़ को दुनिया क्यों नहीं भूल पाती? इमाम हुसैन[अ०] का मक़सद एक ख़ास ज़माने और एक ख़ास सिचुएशन के लिए नहीं था बल्कि आपका मक़सद हमेशा बाक़ी रहने वाला था।

इमाम हुसैन[अ०] ने राहे ख़ुदा, राहे हक़ और गुमराही की जंजीरों में जकड़े हुए इंसानों को आज़ाद करने के लिए शहादत को सीने से लगाया। क्या यह चीज़ें कभी पुरानी और भुलाए जाने लाएक़ हैं? बिल्कुल नहीं! जब तक इमाम हुसैन[अ०] का मक़सद यानी ख़ुदा, इस्लाम और हक़ परस्त इंसान बाक़ी हैं, उस वक़्त इमाम हुसैन[अ०] को भी नहीं भुलाया जा सकता।

कामयाब कौन हुआ

करबला की हक़ और बातिल की जंग में कौन कामयाब हुआ? बनी उमय्या का दुनिया परस्त लश्कर या इमाम हुसैन[अ०] और उनके वफ़ादार सहाबी जिन्होंने ख़ुदा की ख़ुशनूदी के लिए अपना सब कुछ क़ुरबान कर दिया?

अगर कामयाबी-नाकामी और हार-जीत के सही मायने की तरफ़ ध्यान दिया जाए तो इस सवाल का जवाब साफ़ हो जाता है। कामयाबी और जीत यह नहीं है कि इंसान मैदाने जंग में अपनी जान बचा ले या दुश्मन को हलाक कर दे बल्कि जीत उसकी होती है जो अपने मक़सद को बचाते हुए आगे बढ़ सके और दुश्मन को उसके मक़सद में कामयाब न होने दे। अगर जीतने और हारने के यह मायने सामने रखे जाएं तो करबला का नतीजा बिल्कुल साफ़ हो जाता है।

यह सही है कि इमाम हुसैन[अ०] और उनके वफ़ादार सहाबी शहीद हो गए लेकिन उन्होंने अपनी शहादत से अपने मुक़द्दस मक़सद को बचा लिया। मक़सद यह था कि बनी उमय्या की इस्लाम दुश्मन साज़िश को बेनक़ाब किया जाए और उनका असली चेहरा लोगों के सामने लाया जाए, मुसलमानों को नींद से जगाया जाए और उनको जाहिलियत और बुत परस्ती के ज़माने के मुबल्लिग़ों से आगाह किया जाए। करबला में यह मक़सद बेहतरीन तरीक़े से हासिल हुआ।

इमाम हुसैन[अ०] और उनके वफ़ादार सहाबियों ने अपने मुक़द्दस ख़ून से बनी उमय्या के ज़ुल्म की जड़ें हिला कर रख दीं और अपनी क़ुरबानी से बनी उमय्या की ज़ालिम हुकूमत की बुनयादों को हिला कर रख दिया और उनका शर्मनाक साया मुसलमानों के सर से ख़त्म कर दिया। यज़ीद ने इमाम हुसैन[अ०] और उनके वफ़ादार सहाबियों को शहीद करके अपना असली चेहरा ज़ाहिर कर दिया।

करबला के बाद जितने इन्क़ेलाब आए, करबला के शहीदों के इन्तेक़ाम के नाम से शुरू हुए और सभी का नारा यह था कि हम करबला के शहीदों का इन्तेक़ाम लेंगे। यहां तक कि बनी अब्बास के ज़माने तक यही होता रहा और ख़ुद बनी अब्बास ने भी ख़ूने हुसैन[अ०] के इन्तेक़ाम के बहाने से हुकूमत हासिल की। मगर हुकूमत हासिल करने के बाद बनी उमय्या की तरह ज़ुल्म शुरू कर दिया। करबला वालों के लिए इससे बढ़कर कामयाबी और क्या हो सकती है कि वह न सिर्फ़ अपने मुक़द्दस मक़सद तक पहुंच गए बल्कि ज़ुल्म में जकड़े इंसानों को आज़ादी का पाठ पढ़ा गए।

अज़ादारी क्या है?

अगर इमाम हुसैन[अ०] अपने मक़सद में कामयाब हुए हैं तो इस ख़ुशी में जश्न क्यों नहीं मनाया जाता और इसके बजाए रोया क्यों जाता है? क्या यह रोना और मातम करना इस कामयाबी के मुक़ाबले में सही है?

जो लोग ये ऐतराज़ करते हैं उन्होंने दरहक़ीक़त अज़ादारी के फ़लसफ़े को समझा ही नहीं है बल्कि उन्होंने अज़ादारी को कमज़ोरी और एहसासे कमतरी से पैदा होने वाली गिरयाओ-ज़ारी की तरह मान लिया है।

आंखों से आंसू बहने की चार सूरतें हैं:

शौक़ में रोना

एक मां जिसका बच्चा खो गया हो और कई साल बाद उसको मिले तो उस मां की आंखों से बेइख़्तियार आंसू जारी हो जाते हैं। यह रोना मुहब्बत और शौक़ का रोना कहलाता है। करबला के अकसर वाक़ेआत और उनमें रूनुमा होने वाली क़ुरबानियां ऐसी शौक़ बढ़ाने वाली हैं कि इंसान जब उन क़ुरबानियों, उन शुजाअतों और उन दिल दहला देने वाले बयानों को सुनता है तो बेसाख़्ता उसकी आंखों से आंसू बहने लगते हैं और इन आंसूओं का बहना बिल्कुल नाकामी और हार की दलील नहीं है।

जज़बात में रोना

इंसान के सीने में दिल है, पत्थर नहीं है और यही दिल है जो इंसान की फ़ीलिंग्स को बयान करता है। जब इंसान किसी पर ज़ुल्म होता देखता है या किसी यतीम बच्चे को मां की आग़ोश में देखता है जो बाप की जुदाई में रो रहा हो तो फ़ितरी तौर पर दिल में कुछ फ़ीलिंग्स पैदा होती हैं जो अकसर आंसुओं के क़तरे बनकर आंखों से बह जाती हैं।

दरहक़ीक़त इन आंसुओं का आंखों से बहना इंसान के दिल वाला होने को बताता है। अगर एक छह महीने के बच्चे का वाक़ेआ सुनकर कि जिसे बाप के हाथों पर तीर का निशाना बनाया गया हो और तड़प-तड़प कर उसने बाप के हाथों पर जान दे दी हो, दिल तड़प जाए और आंखों से आंसू जारी हो जाएं तो यह कमज़ारी नहीं बल्कि दिल वाला होने की दलील है।

मक़सद के तहत रोना

कभी आंसू किसी मक़सद को बयान करते हैं। जो लोग कहते हैं कि हम मकतबे हुसैन[अ०] पर चलने वाले हैं और उनके मक़सद को मानते हैं, मुमकिन है कि इस मतलब का इज़हार अलफ़ाज़ और एहसासात के ज़रिए करें या आंसुओं के ज़रिए। जो शख़्स सिर्फ़ अलफ़ाज और दूसरे

पैग़ामे करबला

ज़ाहिरी एहसासात से इस मतलब का इज़हार करे उसमें दिखावा और बनावट हो सकती है लेकिन जो शख़्स करबला के वाक़ेए को सुनकर आंसुओं के ज़रिए अपने मक़सद और एहसासात का इज़हार करता है उसका यह इज़हार हक़ीक़त से ज़्यादा क़रीब होता है।

जब हम इमाम हुसैन[अ०] और उनके वफ़ादार साथियों की मुसीबतों पर रोते हैं तो यह रोना दरहक़ीक़त उनके मुक़द्दस मक़सदों पर दिलो-जान से वफ़ादारी का ऐलान और मज़लूम से हमदर्दी की पहचान है और बुतपरस्ती, जुल्म और ज़ालिम से नफ़रत का ऐलान है लेकिन क्या इस क़िस्म का गिरया उनके मुक़द्दस मक़सद को पहचाने बग़ैर मुमकिन है? हरगिज़, हरगिज़ नहीं।

ज़िल्लत और नाकामी पर रोना

यह उन कमज़ोर लोगों का रोना है जो अपने मक़सद तक नहीं पहुंच पाते और उनके अंदर अपने मक़सदों को हासिल करने की ताक़त भी नहीं होती। ऐसे लोग बैठ कर रोने लगते हैं। इमाम हुसैन[अ०] पर ऐसा गिरया नहीं किया जाता और इमाम[अ०] को ऐसे रोने से नफ़रत है। इमाम हुसैन[अ०] पर गिरया करना है तो शौक़, मुहब्बत और मक़सद वाला गिरया होना चाहिए।

आख़िर में इस बात की तरफ़ इशारा भी ज़रूरी है कि इमाम हुसैन[अ०] पर गिरया और सोगवारी करने के साथ-साथ मकतबे इमामे हुसैन[अ०] की पहचान और मारेफ़त भी ज़रूरी है। जब हम इमाम हुसैन[अ०] और उनके वफ़ादार सहाबियों पर रोते हैं तो यह भी सोचना चाहिए कि इमाम हुसैन[अ०] क्यों शहीद हुए और उनका मक़सद क्या था? और क्या हम उनके मक़सद पर अमल कर रहे हैं? अगर इमाम हुसैन[अ०] पर गिरया करें लेकिन नऊज़ु बिल्लाह उनके मक़सद को न समझें और उस पर अमल न करें तो इमाम हुसैन[अ०] इस गिरये से बिल्कुल राज़ी नहीं होंगे।

वाक़ेए करबला ऐसे ज़माने में पेश आया है जब इस्लामी समाज ऐसे हालात से गुज़र रहा था कि लोग समाज सुधार की फ़िक्र छोड़कर मायूस हो चुके थे। ऐसे में आशूरा ने ज़िल्लत की ज़िन्दगी बसर करने वालों को एक इन्क़ेलाबी रास्ता दिखाया और उन्हें हमेशा बाक़ी रहने वाली ज़िंदगी का सबक़ देते हुए कहा कि 'ज़िल्लत की ज़िन्दगी से इज़्ज़त की मौत बेहतर है'।

करबला ने इंसानियत की रगों में ऐसा ख़ून भर दिया जिसकी हरकत कभी न रुक सकेगी, दिलों में जोश व वलवले का ऐसा चिराग़ रौशन किया कि जिसकी लौ कभी मध्यम नहीं हो सकती, ज़हनों को इस लायक़ बनाया कि करबला के मक़सद को समझ सकें, अगर हम करबला के पैग़ाम को समझ लें और अपनी ज़िन्दगी में उसे बरूए कार लाएं तो हर ज़माने के ज़ालिम व सितमगर से मुक़ाबला कर सकते हैं।

शुरू में इस्लाम के दुश्मन अपनी भरपूर ताक़त और पूरी तैयारी के साथ इस्लाम के मुक़ाबले के लिए ख़ड़े हुए लेकिन किसी तरह कामयाब न हो सके और परवरदिगारे आलम ने तमाम जंगों में पैग़म्बरे इस्लाम को कामयाबी अता फ़रमाई। जब इस्लाम के दुश्मन जंगों में नाकाम हो गए तो फिर उन्होंने सियासत का रुख़ किया और मुसलमानों की सोच को बर्बाद करने के लिए फ़रेबकारी का सहारा लिया।

ज़ाहिर में इस्लाम क़ुबूल कर लिया ताकि मुनासिब मौक़ा देखकर अंदर-अंदर हमला कर सकें। मज़हब के मुक़ाबले मज़हब की सियासत का सहारा लिया। दीन की नाबूदी के लिए दीन की हिमायत का चोला ओढ़ लिया। सैकड़ों ख़ुराफ़ात को इस्लाम के नाम से रिवाज दे दिया। अमीरे शाम और दूसरे बनी उमय्या इस्लामी एहकाम मे बदलाव लाए।

यही वह जगह है जहां हम आशूरा के उस अहम पैग़ाम को समझ सकते हैं:

दीन की हिफ़ाज़त

उस वक़्त बनी उमय्या हलाल को हराम और हराम को हलाल कर रहे थे और दीन पूरी तरह ख़तरे में था ऐसे हालात में अगर इस्लाम को तहफ़्फ़ुज़ मिल जाए तो मुसलमान भी महफ़ूज़ हो जाए और अगर इस्लाम मिट गया तो यह मुसलमान ख़ुद बख़ुद मिट जाएंगे। इस्लाम के मिट जाने से तमाम नबियों की ज़हमतें और मेहनतें बेकार हो जाएंगी। इसीलिए इमाम हुसैन[अ०] फ़रमाते हैं, "सिर्फ़ एक रास्ता बाक़ी है कि इस्लाम पर फ़िदा हो जाएं।" क्योंकि फिर दुश्मन का कोई हरबा कामयाब नहीं हो सकता यह सारे रास्तों से ज़्यादा रौशन है, शहीद में सबसे ज़्यादा कशिश होती है। और सबने देख लिया कि क़ियामे हुसैनी[अ०] के बाद उनके ख़ून से बनू उमय्या रुस्वा और फिर नाबूद हो गए। दीने इस्लाम को कमाल हासिल हुआ, मुसलमानों में जज़्बए दीन पैदा हुआ और उन्हें इस्लाम की राह में शहादत का हौसला मिला फिर उसके बाद कितनी ही आज़ादी की तहरीकें चलीं और ज़ालिम हुकूमतों को नाबूद करती चली गईं। यानी दीन की हिफ़ाज़त आशूरा का एक अहम पैग़ाम है।

पैग़म्बर की सुन्नत को नई ज़िंदगी दी

इमाम हुसैन[अ०] ने अपनी शहादत के ज़रिए सुन्नते नबी[स०] को एक नई ज़िन्दगी अता कर दी और इस्लाम की डूबती हुई नब्ज़ों को फिर से उभारा, आपने हुर के लश्कर से यूं ख़िताब किया आगाह रहो बनी उमय्या के हुकमरान और उनके चाहने वाले शैतान की पैरवी कर रहे हैं और उन्होंने इताअते परवरदिगार छोड़ दी है। हुदूद व एहकामे इलाही को छोड़ दिया है, बैतुलमाल को ग़ारत और हराम इलाही को हलाल और हलाले इलाही को हराम कर दिया है।

इमाम[अ०] अच्छी तरह इस बात से वाक़िफ़ थे कि अगर सुन्नते नबी[स०] ज़िन्दा रहेगी तो लोगों की हिदायत हासिल करके हक़ीक़ी इस्लाम को पहचान सकेंगे। और बनू उमय्या की जारी करदा बिदअतों का मुक़ाबला कर सकेंगे। इसलिए इमाम[अ०] ने अपना एक मक़सद, सुन्नते पैग़म्बर को ज़िंदा करना भी बयान किया है कि मैं अपने जद्द रसूले ख़ुदा[स०] की सीरत जारी रखूंगा।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुनकर

इमाम हुसैन[अ०] की तहरीरों और तक़रीरों से यह साबित होता है कि आपका क़याम अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुनकर की ख़ातिर था, इमाम[अ०] के इस क़दम से हुसैन[अ०] के हर चाहने वाले को यह पैग़ाम मिलता है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुनकर को कभी भुलाया न जाए।

इस्लामी समाज में सुधार

समाज की इस्लाह आशूर का एक ख़ास पैग़ाम है ताकि पाकीज़ा व इस्लाह शुदा समाज में इंसान की सलाहियतें उजागर हो सकें। और मिलल की जड़ें ख़ुश्क हो जाएं, समाज की इस्लाह का मसला इतना अहम था कि इमाम ने अपनी क़ियाम का एक सबब समाज की इस्लाह बयान किया है। इस अहम काम के लिए इमाम[अ०] ने अपने साथियों, अपनी औलाद और ख़ुद अपने ख़ून का नज़राना पेश कर दिया ताकि इस्लामी समाज बुराईयों से पाक हो जाए और अख़्लाक़ी वेल्युज़ बाक़ी रहें।

क़ुरआन की हिमायत

रसूल[स०] की वफ़ात के बाद से क़ुरआन की नाबूदी की हर मुमकिन कोशिश की गई और क़ुरआनी एहकाम की खुल्लम खुल्ला मुख़ालिफ़त की जाने लगी।

जब इमाम हुसैन[अ०] ने यह हालात देखे तो इस्लाम की सलामती के लिए यज़ीद के ख़िलाफ़ उठ ख़ड़े हुए। जब तक ज़िंदा रहे कभी ख़त, कभी नसीहत और कभी तक़रीर के ज़रिए क़ुरआन की हिमायत और उसकी बक़ा के लिए मैदाने जिहाद में आ गए और जब शहीद हो गए तो आपका सर कभी बाज़ार कूफ़ा में नोके नेज़ा पर क़ुरआन की तिलावत करके क़ुरआन की बक़ा का ऐलान करता रहा ताकि दुश्मन देख लें कि क़ुरआन कभी मिट नहीं सकता।

मोहर्रम और मुस्लिम यूनिटी

मोहर्रम में इमाम हुसैन[अ०] और उनके वफ़ादार सहाबियों की मज़लूमाना शहादत की याद ताज़ा करने, सानिए ज़ेहरा हज़रत ज़ैनब के ख़ुतबे और अज़ादारी को ज़िंदा करने के लिए मौजूदा दौर में हुसैनी थाट्स को आम करने, इस्लाम की असल शक्ल दुनिया पर साफ़ करने और यज़ीदियत के रूप में मौजूदा अज़ादारी के मुक़द्दस प्रोग्रामों में दुश्मन ताक़तों की तरफ़ से रुकावटों का सिलसिला जारी है। हांलाकि मोहर्रमुल हराम और दूसरे दिनों में अज़ादारी की मजलिसों का मक़सद पैग़ामे इमामे हुसैन[अ०] दुनिया तक पहुंचाना और यज़ीदी अज़ाएम का पर्दा चाक करना होता है लेकिन यज़ीदियत से मुताअस्सिर कुछ ताक़ते उसे अपने मक़सदों के पूरा होने की राह में सबसे बड़ी रुकावट समझते हुए उसके ख़िलाफ़ भरपूर साज़िशें भी करती हैं और अमली तौर पर उसकी बंदिश और रुकावट के लिए सामने मौजूद रहती हैं।

चौदह सौ साल पहले करबला में ७२ जांनिसार हक़ परस्त, दीनदार, वफ़ाशिआर और मुत्तक़ी सहाबियों के साथ इमाम हुसैन[अ०] ने अपनी शहादत पेश करके रहती दुनिया तक हक़ और बातिल में फ़र्क़ पैदा करने और इस फ़र्क़ को पहचानने के लिए एक कसोटी फ़राहम कर दी और साबित कर दिया कि मदीना से मक्का और मक्का से करबला के जंगल तक का सफ़र अपनी ज़ात और फ़ायदे के लिए नहीं ख़ुदा के दीन और इलाही निज़ाम को ख़ुदा के बंदों पर नाफ़िज़ कराने और ज़ालिम को उसके ज़ुल्म से रोके रखने और मज़लूम को उसका हक़ दिलाने के लिए है। इस्लाम की शक्ल बिगाड़ने की कोशिश नाकाम बनाकर इंसानियत के सामने हक़ीक़ी और नबवी इस्लाम को पहचनवाने के लिए है। यही वजह है कि उस मारिके को सिर्फ़ चंद नौजवानों, बूढ़ों, बच्चों और औरतों के साथ पूरा किया गया जिसे बड़ी-बड़ी जंगों में नहीं जीता जा सकता था। इमाम हुसैन की जंग यज़ीद से नहीं बल्कि यज़ीदियत से थी इसलिए आज भी जब कहीं यज़ीदियत की शक्ल में कोई फ़ितना उठाने लगता है तो हुसैनियत की शक्ल में उसका सबक़ सिखाने के लिए ताक़तें सामने आती हैं।

इमाम हुसैन[अ०] ने उस वक़्त यज़ीदी इरादों को बेनक़ाब करके इस्लाम पर पड़ने वाले ख़तरों से उम्मत को आगाह किया और अपनी अज़ीम क़ुरबानी पेश की। इसी तरह आज भी दुनिया के मुख़्तलिफ़ कोनों से यज़ीदियत मुख़्तलिफ़ सूरतों में सर उठा रही है। हमें हुसैनी बनकर उन यज़ीदी सैहूनी और साम्राजी साज़िशों का मुक़ाबला करना होगा।

मोहर्रम हमें जहां इस वाक़ेए की ख़ूनी दास्तान की याद दिलाता है वहां हज़रत इमाम हसैन[अ०] के बड़े मिशन और मक़सद को फैलाने की तरफ़ भी मुतवज्जेह करता है और आलमे इंसानियत के महरूम और मज़लूम तबक़ों के लिए उम्मीद की किरनें बिखेरता है।

यह बात किसी भी शक व शुबहे से बालातर है कि दुनिया का हर कलमा पढ़ने वाले हुसैनी है इसलिए उसकी ज़िम्मेदारी है कि यज़ीदियत के ख़िलाफ़ एक दूसरे के कंधे से कंधा मिलाकर काम करे और सीरते इमाम हुसैन[अ०] को अपने किरदार पर नाफ़िज़ करते हुए पैग़ामे हुसैनियत दुनिया के कोने-कोने में पहुंचाए क्योंकि मौजूदा मुश्किल दौर में उसवए हुसैनी को उजागर करने की सख़्त ज़रूरत है। इमाम हुसैन[अ०] की कोशिश का एक पहलू फ़ासिद निज़ाम को क़ुबूल न करना है। इमाम हुसैन, यज़ीद के सामने नहीं झुके बल्कि आपने यज़ीद के ख़िलाफ़ लोगों के ज़मीर को जगाया कि वह ज़ालिम और ज़ुल्म के ख़िलाफ़ न झुकें बल्कि अपनी कोशिश मुमकिन ज़रिए इस्तेमाल करते हुए जारी रखें।

हमें एक दूसरे के अक़ीदों और नज़रियों को बरदाशत करना चाहिए। आपसी यूनिटी को बाक़ी रखने के लिए ऐसे दिनों में आपसी मदद करना चाहिए। हमें चाहिए कि सोशल यूनिटी के लिए हर तरह की कोशिश करें। अमन कमेटियां बनाई जाएं जिनमें मुख़्तलिफ़ मसलकों और फ़िक्र के संजीदा लोगों को शामिल किया जाए। उलमा, ज़ाकिरीन, ख़ुतबा और स्कालर्स अपनी तक़रीरों और लिटरेचर में क़ियामे इमामे हुसैन[अ०] और यज़ीदी साज़िशों को बेनक़ाब करने के साथ-साथ मुसलमानों में इत्तेहाद के बढ़ावे और मुसलमानों के बीच भाई चारा पैदा करने पर ज़ोर दें।

मोहर्रम के दौरान ख़ौफ़ और कर्फ़्यू की हालत पैदा न होने दें। संगीनों के साए तले अज़ादारी होना इन्तेहाई ग़लत है। इससे दहशत पसंदों और फ़ितना परस्तों के हौसले बुलंद होते हैं। इसलिए पूरी आज़ादी और हिफ़ाज़त के साथ पूरी शान से ये मजलिसें होना चाहिए हैं। जो लोग और गिरोह किसी मसलक की मज़हबी-क़ानूनी और शहरी आज़ादियों और हुक़ूक़ का एहतेराम नहीं करते और रुकावटें पैदा करते हैं उनको पहचानना चाहिए और इमाम हुसैन का मक़सद नज़र में रखते हुए अज़ादारी करना चाहिए। इमाम हुसैन ने आख़िरी वक़्त तक दुश्मनों को भी हक़ की तरफ़ आने की दावत दी थी और उस वक़्त तक लड़ाई की शुरूआत नहीं की जबतक दश्मन ने आप पर हमला नहीं कर दिया।

यूनिटी ही के ज़रिए मुसलमान और अज़ादारी रहती दुनिया तक बाक़ी रह सकते हैं।

MohsenGraphist@gmail.com

फ़ैमिलीज़ में प्यार-मुहब्बत की कमी

■ हुज्जतुल इस्लाम मुजतबा मूसवी लारी

ख़ुदा ने औरत को कुछ ख़ास सलाहियतें दे कर एक बहुत अज़ीम और ख़ूबसूरत रोल निभाने के लिए दुनिया में भेजा है और उसे ये ताक़त की है कि इन सलाहियतों के ज़रिए वह अपनी ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह से पूरा कर सके। साथ ही उसकी जिस्मानी बनावट, मां वाली ख़ुसूसियतों, ज़ेहन और इमोशंस ने उसके अंदर एक ऐसी क्वालिटी पैदा कर दी है कि वह अपने इस सबसे बड़े फ़रीज़े यानी बच्चे की परवरिश को सबसे अच्छे अंदाज़ में कर सकती है।

बच्चे की ज़रूरत सिर्फ़ मां की गोद ही पूरा कर सकती है, दूसरी किसी भी जगह जैसे चिल्ड्रेन केयर सेंटर और बोर्डिंग हाउस वग़ैरा में बच्चों की ज़रूरतों को पूरा नहीं किया जा सकता, चाहे उनमें हर तरह की सहूलियतें ही क्यों न मौजूद हों। जिन बच्चों को मां की मुहब्बत नहीं मिल पाती वह बहुत सी ज़ेहनी परेशानियों का शिकार रहते हैं लेकिन वेस्टर्न सोसाइटी में औरत घर से बाहर काम करने की वजह से अपनी हदों से बाहर निकल जाती है और बच्चों की परवरिश वाली अपनी एक अहम सलाहियत को बर्बाद कर देती है।

सच ये है कि कम्यूनिज़्म और दूसरे स्कूल ऑफ़ थॉटस इंसान के नेचर को बदल नहीं सके हैं बल्कि उन्होंने तो औरत को उसके अस्ली रूतबे से भी हटा दिया है। इसीलिए आज वह बेशुमार रूहानी, समाजी और अख़लाक़ी मुश्किलों में फ़ंसे हुए हैं जिनसे उन्हें निकालने वाला कोई नहीं है।

फ़्रांस के मशहूर फ़ल्सफ़ी, एलेक्सेस कार्ल यूरोपियन घरानों की इस ग़लती के बारे में इस तरह लिखते है, "आज के समाज की सबसे बड़ी ग़लती यह है कि उसने चिल्ड्रेन केयर सेंटर्स को मां की गोद जैसा समझ लिया है और यह ग़लती औरतों की ख़यानत का नतीजा है। जो मांए अपने बच्चों को इन सेंटर्स में भेज देती हैं ताकि वह आज़ादाना ज़िन्दगी गुज़ार सकें, वह अपने घर की मुहब्बत की गर्मी को ख़त्म कर देती हैं। जो बच्चे घर में परवरिश पाते हैं उनके अंदर आगे बढ़ने की सलाहियत उन बच्चों से कहीं ज़्यादा होती है जो घर के बाहर पाले जाते हैं।"

अमेरिका में हर साल कोर्ट में तलाक़ के लिए जाने वाली 25% औरतें वह होती हैं जो किसी न किसी ज़ेहनी बीमारी का शिकार होती हैं और हर साल डेढ़ लाख बच्चे मां-बाप की जुदाई की वजह से अच्छी परवरिश से महरूम रह जाते हैं।

आज अमेरिकी औरत जब रात को घर लौटती है तो पूरी तरह थकी हुई होती है जिससे वह धीरे-धीरे ज़ेहनी मरीज़ हो जाती है और अगर घर में रहे फिर भी उसे दवा खाकर ही सुकून मिलता है। आए दिन साइकॉलोजिस्ट के पास जाती है मगर फिर भी परेशान हाल ही रहती है और यह सारी मुश्किलें घर से बाहर कामों में हिस्सा लेने की वजह से हैं यानी एक ऐसे समाज की पैदावार हैं जो सिर्फ़ मशीन बन कर रह गया है और चौबीस घंटे बस दौड़-भाग होती रहती है।

डाक्टर जार्ज माली कहते हैं, "जवानों की बहुत सी बुराईयां उनके बचपन की यादगार होती हैं जिसकी ज़िम्मेदार ख़ुद मांए होती हैं। जो जवान झूठ बोलता है, जो जानवरों को सताता है, जो समाजी क़ानून का पाबंद नहीं है वह अपनी मां से दूर रहने की वजह से इन बुरी आदतों का आदी बना है। ये ख़ुद अमेरिकी औरतों का ख़्याल है।

आज वहां पैरेंटस और बच्चों के बीच प्यार-मुहब्बत का रिश्ता बहुत कमज़ोर हो गया है। बच्चे सच्चा प्यार न मिलने की वजह से अपने पैरेंटस से दूर हो जाते हैं और अक्सर बहुत दिनों तक पैरेंटस से मिल भी नहीं पाते या ऐसा भी होता है कि पैरेंटस अपने जवान और नौजवान बच्चों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करते हैं या क़ानूनी उम्र तक पहुंचने पर उन्हें घर से बाहर निकाल देते हैं या अगर घर में रहने की इजाज़त भी दे दें तो उन्हें अपना ख़र्च ख़ुद ही उठाना पड़ता है। इन बातों का असर ख़ास तौर पर लड़कियों पर बहुत बुरा होता है जिसकी बुनियाद पर वह अकेले रहना ज़्यादा पसन्द करती हैं और अकेले रहने पर कोई उनकी देखरेख करने वाला नहीं होता, इसलिए वह बहुत सी अख़्लाक़ी बुराईयों में गिरफ़्तार हो जाती हैं।

वहां पर लोगों के आपसी ताअल्लुक़ात भी बहुत ही कमज़ोर हैं, दिली मुहब्बत और प्यार का जज़्बा जैसे मशीनी ज़िन्दगी में फंस कर रह गया है। उस समाज में हमदर्दी, ख़ुलूस और क़ुरबानी नाम की कोई चीज़ नहीं पाई जाती है।

उस कल्चर्ड कही जाने वाली दुनिया में इन्सानियत का जज़्बा बिल्कुल ख़त्म हो चुका है। लोग एक दूसरे की मदद भी सिर्फ़ क़ानून की बुनियाद पर करते हैं। अगर एक आदमी किसी मुश्किल में फंस जाए तो उसकी कोई मदद करने वाला नहीं मिलता, कोई भी उसकी मदद करके अपना माली नुक़्सान करने के लिए तैयार नहीं है लेकिन अगर क़ानून से मजबूर हों जैसे पुलिस का ख़तरा हो तो वह मदद करते हैं लेकिन वह इस काम को किसी नेक काम की वजह से करने को तैयार नहीं होते।

मैं जिस वक़्त जर्मनी के एक हास्पिटल में एडमिट था, मुझे देखने को आने वाले अगरचे बहुत ज़्यादा नहीं थे लेकिन फिर भी उन जर्मनी मरीज़ों से मिलने आने वालों से कहीं ज़्यादा थे जो मेरे वार्ड में थे और इस बात से अस्पताल वालों को

बहुत ताज्जुब होता था क्योंकि जर्मनी में तो मरीज़ों के घर वाले भी उनको देखने नहीं आते।

यहां पर मैं एक सच्ची कहानी सुनाना चाहता हूं। कुछ साल पहले जर्मनी की एक यूनिवर्सिटी के एक प्राफ़ेसर ने हम्बर्ग शहर की जमीअते इस्लामी के प्रेसीडेंट के सामने इस्लाम क़ुबूल किया और कुछ दिनों बाद वह बीमार हो कर एक अस्पताल में भर्ती हो गए। जमीअते इस्लामी के प्रेसीडेंट उस प्रोफ़ेसर को देखने गए। देखा कि वह प्रोफेसर कुछ परेशान हैं। उन्होंने उनसे उसकी वजह पूछी तो प्रोफ़ेसर ने इस तरह जवाब दिया, "आज मेरी बीवी और बच्चे मुझे देखने आए थे और जब उन्हें डाक्टरों ने बताया कि मुझे कैंसर है तो वह जाते वक़्त मुझसे कह गए हैं कि आपको कैंसर है और अब आपकी ज़िन्दगी के ज़्यादा दिन बाक़ी नहीं हैं। इसलिए हम आपको आख़िरी बार ख़ुदा हाफ़िज़ कर रहे हैं और आज के बाद हम आपको देखने नहीं आएंगे। हमें माफ़ कर दीजिएगा।"

इसके बाद उन्होंने कहा, "मुझे अपनी बीमारी और मर जाने का कोई ग़म नहीं है लेकिन अपने घर वालों के इस बर्ताव से बहुत सदमा पहुंचा है।"

यह सुनकर जमीअते इस्लामी के प्रेसीडेंट ने उनसे कहा कि इस्लाम में मरीज़ की अयादत पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। इसलिए जब भी मौक़ा मिलेगा हम आपसे मिलने ज़रूर आएंगे और अपना दीनी फ़र्ज़ पूरा करेंगे।

बेचारे बीमार की हालत बिगड़ती गई। यहां तक कि एक दिन वह दुनिया से रुख़सत हो गया और कुछ मुसलमानों ने जाकर अस्पताल से जनाज़ा लिया, उसके कफ़न-दफ़न का इन्तिज़ाम किया और लाश को क़ब्रिस्तान में ले आए। क़िस्सा यहीं ख़त्म नहीं हुआ बल्कि जैसे ही वह लोग दफ़्न करने वाले थे वैसे ही एक जवान भागा-भागा आया और बड़े ही गुस्से में पूछने लगा कि प्रोफ़ेसर का जनाज़ा कहां है? लोगों ने उससे पूछा कि तुम्हारा इससे क्या रिश्ता है। उसने बताया कि वह मेरे बाप थे और मैं उनकी लाश को पोस्टमार्टम के लिए भेजना चाहता हूं क्योंकि मैंने उनकी लाश को अस्पताल वालों को बेच दिया था। जनाज़ा लेने के लिए उसने बड़ी कोशिश की लेकिन वहां मौजूद लोगों की वजह से वह जनाज़ा नहीं ले जा सका और चुप हो गया। जब उस जवान के पेशे के बारे में उससे पूछा गया तो उसने बताया कि वह सुबह में किसी कारख़ाने में काम करता है और शाम में कुत्तों की सजावट का काम करता है।

इस सच्चे वाक़ेए से पता चल जाता है कि वहां के कल्चर्ड कहे जाने वाली सोसाइटी में प्यार-मुहब्बत की कितनी कमी है।

आज इन्सानियत अख़्लाक़ी बुराईयों के दलदल में धंसती चली जा रही है। बड़े-बड़े स्कॉलर्स ने इस हक़ीक़त को मानते हुए अभी से सुधार की कोशिशें शुरू कर दी हैं।

जो लोग ख़ुद ऐसी ज़िंदगी में डूब चुके हैं उन्हें अंदाज़ा हो गया है कि ऐसी ज़िन्दगी कभी भी इन्सान को कमाल और कामयाबी तक नहीं पहुंचा सकती, ये तो बिल्कुल ख़ाली-ख़ोली और खोखली ज़िंदगी है

आज अपने चारों तरफ़ हमें बेरंग ज़िंदगी दिखाई देती है। हम अपनी रूह की प्यास को बुझाना चाहते हैं, रूहानी कमियों के मुक़ाबले में हमें रूहानी ख़ुराक चाहिए। इन सब मसलों के हल के लिए हमें ख़ुद अपनी तरफ़ देखना चाहिए। जब हम अपनी रूह की आवाज़ पर लब्बैक कहेंगे तो हमें नज़र आएगा कि हमारी रूह अच्छाई, पाकदामनी और मुहब्बत को पसंद करती है।

फ्रेंच फ़ल्सफ़ी एलेक्सेस कार्ल कहते हैं, "हमें ऐसी दुनिया चाहिए जिसमें हर आदमी शुरू ही से अपनी ज़रूरतों को पूरा कर सके, जिसमें दुनियावी और रूहानी ज़िंदगी अलग-अलग न हो। हमें ये बात समझना पड़ेगी कि हमें कैसे ज़िन्दगी जीना है क्योंकि अब हम यह जान चुके हैं कि ज़िंदगी के रास्ते को बग़ैर किसी गाईड और रहनुमा के तय करना बहुत ख़तरनाक है लेकिन ताअज्जुब है कि इस ख़तरे के एहसास ने हमें ज़िंदगी के रास्ते की तलाश पर मजबूर नहीं किया है। सच तो यह है कि ऐसे लोग बहुत कम है जो इस ख़तरे को अच्छी तरह समझते हैं।"

अक्सर लोग तो अपनी मनमानी ज़िन्दगी गुज़ारना चाहते हैं और माडर्न टेक्नॉलोजी की बनाई हुई मशीनों में गर्दन-गर्दन डूबे रहना चाहते हैं। आज हम एक ऐसी दुनिया में ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं जो हमारी हक़ीक़ी ज़रूरतों को पूरा नहीं कर सकती है बल्कि हम इन ज़रूरतों से बिल्कुल मुंह मोड़ चुके हैं। हम दुनियावी ज़िंदगी को रूहानी ज़िंदगी से आगे रखते हैं और अपनी सारी ताक़त को सिर्फ़ अपनी बेहूदा ख़ुशियों और अपने आराम पर क़ुरबान कर देते हैं।

मशीनी इन्सान आज की तरक़्क़ियों और साइंस की पैदावार है, इन्सानियत की पैदावार नहीं है। मसला ये नहीं है कि हम इन तरक़्क़ियों और साइंस को छोड़ बैठें बल्कि बात सिर्फ़ इतनी सी है कि अगर हम आज के इस अख़्लाक़ी बुराईयों के दलदल से निजात चाहते हैं तो हमारे सामने सिर्फ़ एक रास्ता है और वह है आज की इन सारी तरक़्क़ियों और साइंस की जगमगाती दुनिया के साथ-साथ नबियों की टीचिंग्स पर भी अमल करें। जब तक हमारी अक़्ल, हमारी दुनियावी ख़्वाहिशों के पंजे में गिरफ़्तार है उस वक़्त तक इन्सानियत के कमाल और कामयाबी की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती। बहरहाल जब तक हक़ीक़ी इन्सानियत और रूहानी वैल्युज़ की तरफ़ ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक इन्सान का हक़ीक़ी चेहरा दुनिया के सामने नहीं आ सकता है।

दास्ताने ग़म

सकीना

बिन्तुल हुसैन अ०

■ परवीन हैदर

कहानियां सुनना मेरी बेटी सकीना की कमज़ोरी है। छोटी सी उम्र में उसे बहुत सी इस्लामी, तारीख़ी, बादशाहों और शहज़ादों की कहानियां याद हैं। आज भी जैसे ही मुझे घर के कामों से और उसे स्कूल के होम वर्क से छुट्टी मिली, उसने मेरे गले में बाहें डालते हुए हमेशा की तरह पूछा, "मामा! आज कौन सी कहानी सुनाएंगी?"

"बेटा! मैंने तुम्हें सारी कहानियां सुना दी हैं। आज इन कहानियों में से कोई एक कहानी मुझे मेरी बेटी सुनाएगी।" मैंने उसकी पेशानी को चूमते हुए कहा। "चलिए ठीक है। आज रात मैं आपको किसी शहज़ादी की कहानी सुनाऊंगी।" सकीना ने अपने छोटे-छोटे हाथों से अपने स्कार्फ़ ठीक करते हुए कहा।

"हां! शहज़ादी के नाम पर याद आया कि कल तो छठी है। इसलिए तुम मदरसे जाओ तो मरयम, रुक़य्या, फ़ातिमा और अबीहा को रात घर आने और यहीं ठहरने की दावत दे देना। आज रात में तुम सबको शहज़ादी सकीना अ० की कहानी सुनाऊंगी। तुम अपनी कहानी फिर किसी और दिन सुना देना।"

"सच मामा! मैं उन लोगों को अपने घर आने और कहानी सुनने की दावत दे दूंगी।" सकीना ने खुश होकर कहा और फिर अपने बाबा की उंगली थाम कर स्कूल से लिए रवाना हो गई।

उसके जाने के बाद मैं गहरी सोच में डूब गई। शादी के बहुत दिनों के बाद खुदा ने हमारी दुआओं को सुना था। मेरे शौहर हसन मेरी हद से ज़्यादा मायूसी देखकर कहते थे, "समाना! तुम देखना मुझे पूरा यक़ीन है कि खुदा मुझे एक प्यारी सी बेटी ज़रूर देगा। मैं उसका नाम सकीना रखूंगा। सुकून, आराम और राहत देने वाली, मेरे घर की रौनक़ और मेरे जनाज़े की ज़ीनत।"

शहज़ादी सकीना अ० के सदक़े में सकीना मेरे सूने चमन में बहार बन कर आई। मेरी हर बात मानने और अपने बाबा की हर बात को सुनने वाली। मजलिसों में, महफ़िलों में, जानमाज़ पर, हर जगह वह हसन के साथ-साथ होती। हद तो यह है कि सोती भी उन्हीं के सीने पर है। जब वह उसे अपने हाथ पर लिटा कर और अपने सीने से लगा कर छोटे-छोटे सूरे, दुआएं और उसूले दीन याद कराते हैं तो वह उन्हें याद करते-करते बचपन की मासूम नींद सो जाती है। सकीना घर में होती है तो हम दोनों की आंखे उसका तवाफ़ करती रहतीं हैं। स्कूल और मदरसे चली जाती तो हमारे घर में बोझल और तकलीफ़देह संनाटा डेरे डाल लेता है।

इस शाम उसने अपनी चारों कज़ेन्स को यह कहकर दावत दी थी कि आज रात तुम सब हमारे घर रुकोगी। मामा! हम सबको करबला और जनाबे सकीना अ० की कहानी सुनाएंगी। रात के खाने के बाद हम उस कमरे में आ गए जो हमारा ड्राइंग रूम भी है। यहीं नमाज़ भी पढ़ी जाती है और यही कमरा हसन का स्टडी रूम भी है। रुक़य्या ने कहानी सुनने के लिए बेताब होकर कहा, "फ़ुफी! मैंने मजलिसों में सुना है और पढ़ा भी है कि शहज़ादी सकीना अ० अपने बाबा हुसैन अ० की नमाज़े शब में मांगी गई दुआओं का समर थीं। ये बताइए कि उनकी विलादत कब हुई थी?"

मैंने बच्चियों के चेहरे पर संजीदगी और रुक़य्या के शौक़ भरे लहजे को देखते हुए कहानी शुरू की, "बच्चो! यह शहज़ादी मदीने में 24 ज़िलहिज्ज 56 हिजरी में ईदे मुबाहेला के दिन पैदा हुई थी। आपकी मां, रबाब बहुत मोहतरम, बावक़ार, शरीफ़ और बुलंद किरदार औरत थीं। उनकी इस बहुत प्यारी बेटी ने विलादत के बाद जब दो दिन तक दूध नहीं पिया तो उनकी मामता बेचैन हो गई। उन्होंने बहुत कोशिश की कि बच्ची किसी तरह से थोड़ा सा दूध पी ले लेकिन कामयाबी न हुई। आख़िर में इस वाक़ेए की ख़बर इमाम हुसैन अ० को दी गई।

आप[अ०] अंदर तशरीफ़ लाए और फ़रमाया, ''रबाब! मेरी बच्ची को थोड़ी देर के लिए मुझे दे दो।'' इमाम ने अपनी दो दिन की मासूम बच्ची को अपनी आग़ोश में लिया। सीने से लगाकर प्यार किया। फिर बच्ची की पेशानी को चूमकर उसके कान में कुछ कहा। उसके बाद अपनी ज़बान बच्ची के दहेन में दे दी।''

''फ़ुफ़ी! इमाम[अ०] ने सकीना[अ०] की भूख को मिटाने के लिए दूध या पानी मंगवाकर क्यों नहीं दिया। अपनी ज़बान ही क्यों चुसाई?'' मरयम ने जनाबे सकीना[अ०] के भूखा रहने पर परेशान होकर सवाल किया।

''बिटिया!'' मैंने उसे क़रीब करते हुए बताया। ''इसलिए कि रिसालत और इमामत की ज़बान चुसाकर इस घराने के लोगों को इमामत के राज़ और इलाही इल्म तालीम किए जाते रहे हैं। इमाम[अ०] इस बच्ची को ज़बान चुसा कर सेराब कर रहे थे मगर साथ-साथ इमाम[अ०] की आंखों से आंसू भी रवां थे। जब रबाब की नज़र इमाम[अ०] के चेहरे पर पड़ी तो घबरा कर पूछा, ''आक़ा! क्या इस बच्ची की विलादत आप[अ०] की परेशानी की वजह है?''

फ़रमाया, ''रबाब! मैं देख रहा हूं कि एक दिन यह मासूम और नाज़ों में पली बच्ची तीन दिन की भूखी प्यासी नन्हे-नन्हे हाथों में खाली कूज़ा लिए प्यास-प्यास की सदाएं बुलंद कर रही होगी मगर मेरी इस बच्ची को एक क़तरा पानी नहीं दिया जाएगा। दुश्मनों के नरग़े में उसकी फ़रयाद कोई नहीं सुनेगा। उसके मासूम रुखसारों पर तमाचे मार कर उन्हें नीला कर दिया जाएगा।''

मां ने इमाम[अ०] की बात सुनी तो बहुत रोईं। इमाम ने रबाब को तसल्ली और दिलासा देकर फ़रमाया, ''बीबी! यह अटल है इसलिए सब्र करो।''

''मामा! फिर तो उस शहज़ादी की परवरिश बहुत लाड-प्यार से हुई होगी।'' सकीना ने अपने दोनों हाथों पर अपनी ठोड़ी जमाते हुए पूछा।

''बेटा! अगर तुम्हारी मुराद दुनियावी नेमतों और असाइशों से है तो ऐसा कुछ नहीं था।'' हसन ने इन्तेहाई नर्मी से जवाब देते हुए कहा जो कुछ देर पहले ही कमरे में दाखिल होकर हमारे पास आकर बैठ गए थे। ''यह शहज़ादे और शहज़ादियां बनी हाशिम के मुहल्ले के आम से घरों में अपने ख़ुदा की याद में मसरूफ़ रहते थे जहां तंगदस्ती और फ़क़ीरी के बावजूद ग़रीबों, मोहताजों, और मिसकीनों को अपने सामने का खाना उठाकर दे दिया जाता था। जहां गुलामों और कनीज़ों से वही बर्ताव किया जाता था जो घर के लोगों से किया जाता है। यह वह नूरानी चेहरे थे जिन पर मेहनत-मशक़्क़त करने से ज़र्दी छाई रहती थी। यह वह होंठ थे जो खुदा का ज़िक्र करते-करते खुश्क हो जाते थे। यह वह जिस्म थे जो अपने माबूद की बारगाह में झुकते थे तो बेद की तरह कांपते थे और इतना रोते थे कि उनकी आंखों पर वरम आ जाता था। यह वह मोहतरम हस्तियां थीं जो मुसीबतों, परेशानियों और फ़ाक़ों के बावजूद क़नाअत, सादगी, सब्र, बर्दाश्त और वफ़ा का पैकर थीं। यह बच्ची इसी मोहतरम ख़ानदान से थी। इस बच्ची ने विरासत में वह तमाम खूबियां पाई थीं जो उसके दादा अली मुर्तज़ा[अ०], दादी फ़ातिमा ज़ेहरा[अ०], चचा हसने मुजतबा[अ०], चचा अब्बासे अलमबरदार[अ०], भाई इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०] और इमाम हुसैन[अ०] जैसे बुलंद मरतबा बाप की अज़ीम बेटी को मिल सकती थीं।''

''सिर्फ़ यही नहीं...'' मैंने इन बच्चियों के शौक़ को देखते हुए बताया, ''बहुत कमसिनी में ही यह मासूम बच्ची एक ऐसी ज़हीन और नेक बच्ची बन गई थी जिसे अपनी ख़ानदानी अज़्मत का भी एहसास था और मदीने से हिजरत के बाद सफ़र की बेपनाह मुश्किलों और अपने खानदान पर टूटने वाली परेशानियों पर हैरान व परेशान भी थी।''

''फ़ुफ़ी! मदीना तो रसूल अल्लाह[स०] का शहर है तो क्या वहां के रहने वालों ने भी इमाम[अ०] को मदीने से हिजरत करने से नहीं रोका?'' अबीहा जो उम्र में इन बच्चियों से थोड़ी सी बड़ी भी है और बहुत तेज़ लड़की है, उसने सवाल किया।

''यह कोई नई या ऐसी बात नहीं थी जिस पर हैरान हुआ जाए। इसी मदीने में इमाम हुसैन[अ०] की मां फ़ातिमा ज़ेहरा[अ०], बाबा अली[अ०] और भाई हसन[अ०] के साथ क्या नहीं हुआ था। इस मदीने ने हुज़ूर[स०] की ज़िंदगी ही में आप[स०] को इतना दुख दिया गया था कि अगर रहमतुल लिल आलमीन[स०] की जगह कोई दूसरा नबी होता तो उसकी बददुआ से मदीना क्या सारा अरब भी तारीख़ का एक भूला हुआ हिस्सा बन चुका होता। मगर हमारे नबी इसी बदनसीब शहर वालों की बदज़बानी को बर्दाशत करते रहे, उन पर पत्थरों की बारिश होती रही, आपका[स०] मुक़द्दस खून ज़ख्मी रुखसारों पर से बहता हुआ इसी सर ज़मीन में जज़्ब होता रहा लेकिन आप[स०] उन लोगों के लिए दुआ फ़रमाते रहे।

फ़ातिमा[अ०] की गर्दन के पुटठे मदीना वालों के ज़ुल्म की दास्तान सुनकर तन गए और उसका खूबसूरत सफ़ेद चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। ''फ़ुफ़ी! आले रसूल[स०] और मदीने वालों का यह रवैय्या!''

''अरे नबीए अकरम[स०] के बाद दूसरे इमाम भी वहीं रहे लेकिन इसी मदीने में किसी को ज़हेर दिया गया, किसी को क़ैद किया गया, किसी को जिला वतन किया गया, किसी को ज़बरदस्ती मदीने से बुलाया गया मगर मदीने वालों ने उनकी हिफ़ाज़त की कोशिश तो दरकिनार उन पर होने वाले ज़ुल्मों पर उफ़ भी न की?'' अबीहा ने झट अपनी मालूमात का इज़हार कर दिया।

''हां बेटा!'' मैंने उसकी ताईद की। ''इसी बेहिसी को देखते हुए इमाम हुसैन[अ०] हरगिज़ तैयार न थे कि जब मदीने में रहना मुमकिन नहीं और बैअत भी नहीं करना है तो फिर अपनी इस क़ुरबानी को वहीं पेश करना होगा जहां से वह रहती दुनिया तक बाक़ी रहे यानी करबला। इसलिए 28 रजब 60 हिजरी रात के अंधेरे में एक छोटा सा क़ाफ़िला मदीने से चला। उस वक़्त सारी दुनिया सो रही थी लेकिन आयए ततहीर के वारिस जाग रहे थे। सवारियां दरवाज़े पर थीं। सुबह का वक़्त था

कि नवासए रसूल[स॰] अपने नाना, मां और भाई की क़ब्रों से रुखसत ले कर औरतों और बच्चों के साथ मदीने से निकल पड़ा। इस कठिन राह में मुसीबतों के कितने तूफ़ान और क़दम-क़दम पर रंजो अलम के कितने पहाड़ खड़े थे मगर इस वाक़ेए का सबसे तकलीफ़देह पहलू यह है कि इस छोटे से क़ाफ़िले में सिर्फ़ जवान और बूढ़े ही नही, औरतें, छोटे और दूध पीते बच्चे भी थे। जैसे-जैसे यह क़ाफ़िला अपनी मंज़िलें तय करता गया उन मासूम बच्चों की क़ाफ़ले में और फ़िर शहादत के वक़्त मौजूदगी ने हुसैन[अ॰] की मज़लूमियत को इतना बुलंद किया कि आज अगर किसी ग़ैर मुस्लिम की निगाह जनाबे अली असग़र[अ॰] और सकीना[अ॰] की मुसीबतों और उस ख़ानदान की औरतों की बेपरदगी पर पड़ती है तो उसकी रूह इस ज़ुल्म पर कांप जाती है। जनाबे सकीना[अ॰] का किरदार धीरे-धीरे इस अंदाज़ में उभरता है कि आप[अ॰] उस वक़्त तक़रीबन चार साल की थीं मगर इन्तेहाई कमसिनी के बावजूद वक़्त और हालात की धड़कन, अपने खानदान की मुश्किलें और इस रास्ते की मुश्किलों को इसी तरह महसूस कर रही थीं जिस तरह इमाम की निगाहें अपनी शहादत से पहले और उसके बाद के हालात देख रही थीं। इमाम[अ॰] को इल्म था कि मेरी लाडली, मेरे सीने पर सोने वाली सकीना[अ॰] खाक पर सोएगी। जिन नंहे-नंहे हाथों के मैं बोसे लेता हूं मेरे बाद उन पर रस्सी बांधी जाएगी। जिस बच्ची की आवाज़ मेरी रूह को ताज़गी देती है, मेरे बाद यह बच्ची दर्द भरी आवाज़ में मुझ पर और अपने भरे कुनबे पर बैन करेगी। जिन मासूम रुखसारों के मैं बोसे लेता हूं उन्हीं रुखसारों को बेदीन तमाचों से नीला कर देंगे।

''मामा! क्या सकीना के बाबा उनसे बहुत ज़्यादा मुहब्बत करते थे?'' सकीना ने अपनी डबडबाई हुई आंखों से मेरी जानिब देखते हुए सवाल किया।

''बेशक बेटा! इमाम[अ॰] को उस बच्ची से बहुत मुहब्बत थी। रिवायतों में है कि सकीना[अ॰] की विलादत के बाद इमाम हुसैन[अ॰] ने शबे आशूर तक अपनी इस बच्ची को अपने सीने से जुदा नहीं किया। हज़रत सकीना[अ॰] की आरामगाह उनके बाबा का सीना था। जब तक वह अपने बाबा के सीने पर नहीं सोती थीं उन्हें नींद नहीं आती थी। इमाम हुसैन[अ॰] की कमसिन बेटी सकीना[अ॰] अगर चंद लम्हों के लिए भी उनकी नज़रों से ओझल हो जाती थी तो इमाम[अ॰] बेचैन हो जाते थे। सकीना[अ॰] का दस्तूर था कि जब नमाज़ का वक़्त आता तो यह बच्ची बाबा के लिए जानमाज़ बिछा कर बैठ जाती थी। आशूरा के दिन भी सकीना[अ॰] ने अपने बाबा के लिए खेमे के अंदर जानमाज़ बिछाई। मगर इस बच्ची के बाबा नमाज़ पढ़ने नहीं आए। सकीना[अ॰] आगे बढ़कर जानमाज़ पर बैठ गईं। आंखें बंद करके और सर के बाल खोल के फ़रमाती हैं, ''ऐ मेरे पालने वाले ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैंने जानमाज़ बिछाई हो और वह खाली रह गई हो। क्या आज मेरा बाबा नमाज़ पढ़ने के लिए नहीं आएगा?'' इधर सकीना[अ॰] अपने बाप को नमाज़ पढ़ने के लिए बुलाने की दुआ कर रही थीं उधर उनके बाबा का सर सजदे में काटा जा रहा था।

''फ़ुफी! क्या सकीना[अ॰] को अपने बाबा के क़त्ल होने के बारे में पता था।'' फ़ातिमा ने सिसकियां लेते हुए पूछा।

''मेरा ख्याल है कि उनको पता था क्योंकि कि सकीना[अ॰] सुबह से अपने बाबा को ख़ाको-खून में देख रही थी। आपको कभी एक मय्यत खेमों तक लाते और कभी दूसरी मय्यत लाते देख रही थी। जब इमाम हुसैन[अ॰] ने मैदान की तरफ़ जाना चाहा तो आख़िरी रुख़सत के लिए खेमे में तशरीफ़ लाए बहन को आवाज़ देकर पुराना लिबास पहना। सब्र की तलक़ीन की। सैदानियों को आख़िरी सलाम करके अपनी बेटी की तरफ़ मुतवज्जेह हुए जो औरतों से अलग एक कोने में बैठी यह मंज़र देख रही थी। इमाम[अ॰] सकीना[अ॰] के क़रीब गए तसल्ली दी। फिर फ़रमाया, ''मेरी बेटी! यह आखिरी रुखसत है। अब क़यामत के दिन हौज़े कौसर के किनारे मुलाक़ात होगी। रोओ मत! असीरी के लिए तैयार रहो। जब मेरा टुकड़े-टुकड़े बदन खाक पर और मेरी रगों से खून बहता देखो तो सब्र करना।'' इमाम[अ॰] रुखसत हुए, ज़ख्मों से चूर खून आलूद और निढ़ाल जिस्म के साथ घोड़े पर सवार हुए। फ़रमाया, ''वफ़ादार घोड़े! यह आख़िरी ज़हमत है। हुसैन[अ॰] को मंज़िल तक पहुंचा दे।'' घोड़े ने क़दम आगे न बढ़ाए बल्कि अपने पैरों की तरफ़ इशारा कर दिया। इमाम[अ॰] ने घोड़े के पैरों की तरफ़ नज़र डाली तो देखा कि नन्ही सकीना[अ॰] घोड़े के क़दमों से लिपटी हुई कह रही है, ''वफ़ादार घोड़े! मेरे बाबा को मैदान की तरफ़ मत ले जा। सुबह से देख रही हूं जो उस तरफ़ गया वापस नहीं आया।'' इमाम[अ॰] घोड़े से नीचे तशरीफ़ लाए। फ़रमाया, ''बेटा! तुम्हारा बाबा अभी-अभी तुमसे रुखसत होकर आया है। उसे अब न रोको अस्र का वक़्त क़रीब है।'' सकीना[अ॰] ने बाप के गले में बांहे डाल दीं। ''बाबा बस आखिरी ज़हमत है। एक बार मुझे अपने सीने पर लिटा लीजिए।''

इमाम[अ॰] रो पड़े। फिर तपती झुलसती धूप में गर्म रेत पर लेट गए और सकीना[अ॰] को आखिरी बार अपने सीने पर लिटा लिया। इस मौक़े पर भी इस नातवां मगर ताक़तवर बच्ची को अपने बाबा का हर-हर मंज़िल पर दिया हुआ दर्स याद था कि सब्र से काम लेना। देखो इस ग़म में कुर्ता न फाड़ना। न इस सोग में मुंह नोचना और न अपने मरतबे से नीची बातें करना। तुम्हें ख़ुदा की क़सम देता हूं कि आह व वावेला न करना।''

रुक़य्या को यह सब सुनकर यक़ीन नहीं आ रहा था। इसी लिए हैरानी के साथ पूछा, ''फ़ुफी! क्या शहज़ादी सकीना[अ॰] ने इतना सब्र किया?''

''हां बेटा! उस बच्ची ने भी मुसीबतों को बरदाशत किया जबकि हुसैन[अ॰] से मुहब्बत करने की सज़ा सबसे ज़्यादा इसी बच्ची को दी गई। उसके नंहे-नंहे कानों से बुंदों को खींच के लूटा गया। रुखसारों पर तमांचों से नील डाले गए। ऊंट की पीठ से बांध कर लहू लुहान किया गया। उसे दिखा-दिखा कर

उसके सामने पानी बहाया गया। कनीज़ी में मांगा गया। मां बहनों और फुफियों के साथ एक रस्सी में बांध कर दर बदर फिराया गया। फिर जब यह बच्ची अपने बाबा को याद करके रोती थी तो शिम्र घुड़कियां देता था और ताज़याने मारता था।''

''मामा! क्या उन बेरहमों में कोई भी ऐसा नहीं था जिसे इस मासूम शहज़ादी पर रहम करता हो?'' सकीना बाक़ाएदा हिचकियां लेकर सवाल कर रही थी।

''इस मासूम पर कौन रहम खाता जबकि शहज़ादी के छः महीने के भाई अली असग़र की प्यास पर किसी को तरस न आया। बच्चा भूख-प्यास की बेचैनी से ऐड़ियां रगड़ रहा था। उस नन्हे बच्चे की मां का दूध भी सूख चुका था, वह क़रीब ही सर झुकाए बैठी थीं और उनकी आंखों से आंसुओं का दरिया बह रहा था। मगर यज़ीद का हुक्म था कि हुसैन[अ०] के साथियों और रिश्तेदारों यहां तक कि बच्चों पर भी पानी बंद कर दिया जाए। इसलिए दो मोहर्रम को ही पानी बंद कर दिया गया था। इब्ने ज़ियाद ने हुर बिन यज़ीद रियाही को एक खत भेजा था जिसमें साफ़-साफ़ लिखा था कि हुसैन[अ०] के साथ सख्ती से पेश आओ और उन्हें किसी ऐसी जगह रूकने पर मजबूर करो जहां पानी न हो। हुसैन के ख़ेमे नहर से बहुत दूर तपती हुई रेत पर लगवाए गए। सूरज दिन भर अपनी पूरी ताक़त से इन ख़ेमों पर चमकता था। इन ख़ेमों में रहने वाले यक़ीनन सूरज की गर्मी को महसूस करते थे। फूल जैसे बच्चे कुमहला कर रह गए थे। नहरे फ़ुरात कुछ दूरी पर बह रही थी मगर फ़ुरात पर यज़ीद के सिपाही पहरा दे रहे थे। इब्ने ज़ियाद का हुक्म था कि फौजें नहरे फ़ुरात और हुसैन के ख़ेमों के बीच इस तरह खड़ी हो जाएं कि ख़ेमों में पानी का एक क़तरा न पहुंचने पाए। इमाम[अ०] की शहादत के बाद इन बेवारिस औरतों और यतीम बच्चों को पानी मिला मगर कभी-कभी और बहुत कम। इतना कम कि सकीना[अ०] की शहादत के बाद जब गुस्ल देने वाली ने इस बच्ची को गुस्ल दिया तो यह कह कर रोती थी कि प्यास की शिद्दत से इस बीबी की हड्डियां तक सूख चुकी हैं।

''फुफी! क्या इस शहज़ादी सकीना[अ०] की शहादत करबला में हुई थी।'' रुक़य्या ने पूछा।

''नहीं रुक़य्या! इस बीबी की शहादत करबला में नहीं हुआ था मगर उस पर अपने बाप और चचा की जुदाई की मुसीबत ने इतना असर डाला था कि उसके बाद इस मासूम के आंसू कभी नहीं रुके। सबसे ज़्यादा तकलीफ़े भी इसी बच्ची ने सहीं। शहर-शहर घुमाए जाने के बाद इन क़ैदियों को शाम में क़ैद कर दिया गया था। यह एक पुराना सा मकान था जिसमें अहले रसूल[अ०] को न फ़र्श मिला था न बिस्तर। इस मकान में कोई छत भी नहीं थी। दिन की झुलसती हुई धूप और रात की ओस की वजह से क़ैदियों के चेहरे और बदन की खालें लटक गई थीं। इन क़ैदियों में १७ मासूम बच्चे भी थे जो भूख-प्यास की शिद्दत से रोते और तिलमिलाते थे। शिम्र उन्हें डराता था। शिम्र के डर से यह मासूम बच्ची रोती भी धीरे-धीरे थी। कभी-कभी क़ैदखाने के ऊपर से परिंदों को उड़ते हुए देखती तो मां से पूछती, ''अम्मा! शाम होते ही यह परिंदे कहां जाते हैं?'' मां अपने कलेजे पर हाथ रख के कहती, ''बेटा! यह परिंदे शाम को अपने आशियानों को वापस जाते हैं।''

घर का नाम सुनती तो हसरत से कहती, ''अम्मा! मदीने में हमारा घर भी तो है। हमें वापस जाना कब नसीब होगा?'' मगर इस मासूमा की यह मासूम ख्वाहिश हसरत में बदल गई। कहा जाता है कि अपने बाप के ग़म में रोते-रोते इसी शाम के क़ैदखाने में गुज़र गई और इसी क़ैदखाने में क़ब्र तैयार करके इमाम ज़ैनुल आबिदीन[अ०] ने अपने बाप की सोगवार को अपने हाथों से ज़मीन के सुपुर्द कर दिया।''

क्हानी क्या मुसीबतें ख़त्म हुईं तो बच्चियों समेत हसन भी रो रहे थे। मैंने आंसुओं के साथ इस अज़ीम और बदनसीब क़ैदी बच्ची को खिराजे तहसीन पेश करने के लिए गर्दन झुका दी। ●

ये है करबला का मक़सद

■ मुहम्मद अज़ीम सबज़वारी

तारीख़ गवाह है कि इंसान ने हमेशा बहादुरी, बुलंदी और इज़्ज़त और बुर्ज़ुगी को पसंद किया है क्योंकि यह ख़सलतें किसी भी आज़ाद और इंसाफ पसंद शख़्स को जुल्म के सामने झुकने नहीं देतीं। जब भी कोई इंसान तारीख़ के पन्ने पलटता है तो उसकी निगाहें वाक़ेए करबला पर आकर ज़रूर रुक जाती हैं और जहां वह ख़ालिके करबला हुसैन[अ०] की अज़मत और सरबुलंदी का ऐतराफ़ करने पर मजबूर होता है वहीं उसके ज़ेहन में कई तरह के सवाल उठने लगते हैं। सबसे पहले वह हुसैन[अ०] की शख़्सियत पर ग़ौर करता है तो उसे पता चलता है कि हुसैन[अ०] पैग़म्बरे इस्लाम की चहेती बेटी फ़ातिमा ज़ेहरा[अ०] और मुहाफ़िज़ पैग़म्बर, अली[अ०] के बेटे हैं। यह वह शख़्सियतें हैं जिनकी विलादत की मुबारकबाद देने के लिए जिबरील अमीन[अ०] हज़ार फ़रिश्तों के साथ पैग़म्बरे इस्लाम[स०] की ख़िदमत में हाज़िर हुए थे और उनकी सच्चाई और पाकीज़गी की गवाही दी थी।

रसूले खुदा[स०] ने आप ही के बारे में फ़रमाया था कि हुसैन[अ०] मुझसे है और मैं हुसैन[अ०] से हूं। हसन[अ०] व हुसैन[अ०] दोनों जन्नत के सरदार हैं। हुसैन[अ०] हिदायत का चिराग़ और निजात की कश्ती हैं। हिस्टरी को पढ़ने वाला एक बार फिर वाक़ेए करबला की तरफ़ पलटता है। वह देखता है कि यह वाक़ेआ इस्लाम के पाक पैग़म्बर की वफ़ात के सिर्फ़ पचास साल बाद पेश आया है और यही वह जगह है जहां यह अहम सवाल सर उठाता है कि पैग़म्बरे इस्लाम[स०] की रेहलत के सिर्फ़ पचास बर्सों में इस्लामी समाज ऐसी जगह पर कैसे पहुंच गया कि करबला का वाक़िआ पेश आया और रसूले पाक[स०] के नवासे हुसैन इब्ने अली[अ०] को शहीद कर दिया गया?

वाक़ेए करबला को समझने के लिए इस वाक़ेए के पेश आने की वजहों को समझना ज़रूरी है। यह बात अपनी जगह मानी हुई है कि किसी भी कल्चरल, सियासी और समाजी इन्क़ेलाब में सोच और नज़रियों को पूरी तरह नहीं बदला जा सकता। नतीजा यह होता है कि पिछली सोच की बाक़ी रह जाने वाली मीरास समाज को पिछले ज़माने के रस्मो रिवाज की तरफ़ वापस ले जाने का रास्ता मुहय्या करती हैं।

रसूले पाक[स०] ने अपनी रिसालत और अज़ीम रूहानी शख़्सियत के ज़रिए इस दौर के समाज में बहुत गहरी और बुनयादी तबदीलियां पैदा कीं। लेकिन आपकी रेहलत के बाद जाहिलियत के ज़माने की तरफ़ पलटने की तहरीक में तेज़ी आ गई और दीन में बहुत सी बिदअतें शामिल कर दी गईं। इस्लामी दुनिया पर बनी उमय्या के कंट्रोल में इस्लामी समाज को पूरी ताक़त के साथ नीचे की तरफ़ ले जाया जाने लगा। नौबत यहां तक आ पहुंची कि जाहिलियत के ज़माने की बहुत सी रस्मों को जिनके ख़ातमे के लिए पैग़म्बर[स०] ने ज़बरदस्त मेहनत और मश्क़्क़त की थी, फिर से फैला दिया गया था।

बिदअत का यह सिलसिला यज़ीद के दौर में अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया और इमाम हुसैन[अ०] को एक बार फिर उम्मत को यह दावत देना पड़ी कि "मैं तुम्हें किताबे खुदा और सुन्नते पैग़म्बर पर अमल करने की दावत देता हूं क्योंकि सुन्नते पैग़म्बर को भुला दिया गया है और बिदअतें फैलाई जा रही हैं।"

इमाम हुसैन[अ०] देख रहे थे कि हाकिम सही तरीक़े से काम नहीं कर रहे। इस्लामी समाज जिसकी रहबरी कभी रसूले पाक[स०] जैसी बेमिसाल ज़ात कर रही थी आज यज़ीद जैसे फ़ासिक़ व फ़ाजिर शख़्स के हाथ में है। बनी उमय्या की हुकूमत के ज़माने में रिश्तेदारों को हुकूमत की तरफ़ से सहूलतें दी जा रही थीं और नसली तास्सुब को जिसकी रसूले पाक सख़्त मुख़ालिफ़त किया करते थे, फिर से अहमियत दी जाने लगी और वक़्त गुज़रने के साथ-साथ जिहालत के ज़माने के रस्मो रिवाज समाज के अंदर फैला दिए गए और इस तरह इस्लामी समाज बड़ी तेज़ी के साथ असलर दीन से दूर होता चला गया।

इस सूरतेहाल का मुक़ाबला करने के लिए रसूले पाक[स०] के अहलेबैत[अ०] और कुछ सहाबा ने लोगों को हक़ीक़तें बताने की कोशिशें शुरू कीं।

लेकिन जब समाज का इक़्तेदार नामुनासिब लोगों के हाथ में हो तो आम राय पर उसके निगेटिव असर का पड़ना यक़ीनी है। यही वजह है कि इस दौर में इस्लाम की फ़िक्री बुनियादें बड़ी आसानी से खोखली की जाने लगीं।

मिसाल के तौर पर मस्जिद, जिसे हुज़ूरे पाक[स॰] के दौर में समाज की समाजी, सियासी और इबादी सरगर्मियों के एक सेंटर की हैसियत हासिल थी, धीरे-धीरे अपने असली मक़सद से हट गई और उसे सिर्फ़ इबादत ख़ाने में तबदील कर दिया गया। इन तबदीलियों ने समाज को एक ऐसे मक़ाम तक पहुंचा दिया कि लोग हर चीज़ से अलग हो गए और उनकी नज़र में इस्लाम के मुस्तक़बिल की कोई अहमियत बाक़ी नही रही और नौबत यहां तक आ पहुंची कि समाज की बहुत सी असरदार शख़्सियतें दीन की फ़िक्र के बजाए छोटे-छोटे माद्दी फ़ायदों के हासिल करने में मशग़ूल हो गईं।

अमीरे शाम के बाद यज़ीद खलीफ़ा बन गया हांलाकि अमीरे शाम ने हज़रत इमाम हसन[अ॰] के साथ सुलह के मुआहिदे में इस बात का अहद किया था कि वह अपने बाद किसी को अपना जांनशीन तय नहीं करेगा। इस मुआहिदे को तोड़कर यज़ीद ने सत्ता पर कब्ज़ा कर लिया।

यज़ीद अपनी हुकूमत को बचाने के लिए इस्लामी तालीमात और दीन के एहकाम को पामाल करने और बदलने से भी परहेज़ नहीं करता था। वह मुसलमानों की पाकीज़ा ख़िलाफ़त का किसी तौर से भी लायक़ नहीं था और खुल्लम खुल्ला इस्लामी एहकाम का मज़ाक़ उड़ाता था।

इमाम हुसैन[अ॰] भी समझ रहे थे कि यज़ीद जैसे शख़्स की पालिसियों के सामने ख़ामोश रहना इस्लाम के ख़ातमे के बराबर है। इमाम हुसैन[अ॰] यज़ीद की फ़ासिक़ व फ़ाजिर हुकूमत के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करना अपनी शरई और ईमानी ज़िम्मेदारी समझते थे। आप देख रहे थे कि दीनी इक़्तेदार किस तरह से कमज़ोर हो रहा है और बिदअतों को राएज किया जा रहा है। आपने एक खुतबे में उस दौर की समाजी हक़ीक़तों को यूं बयान फ़रमाया :-

''क्या तुम लोग नहीं देख रहे हो कि हक़ पर अमल नहीं हो रहा और बातिल को रोका नहीं जा रहा?''

इमाम हुसैन[अ॰] अच्छी तरह जानते थे कि इन बिदअतों ने इस्लामी बुनयादों को ख़तरे में डाल दिया और अगर सूरतेहाल इसी तरह चलती रही तो फ़िर दीनी तालीमात का एक बड़ा हिस्सा ख़त्म हो जाएगा और इस्लाम की सिर्फ़ ज़ाहिरी शक्ल ही बाक़ी रह जाएगी। लोगों की नज़र में दुनिया की मुहब्बत इस क़द्र रच बस गई थी कि इमाम ने उसे यूं बयान फ़रमाया, ''तुम देख रहे हो कि ख़ुदा से किए गए वादों को पामाल किया जा रहा है लेकिन न कोई कुछ कहता है और न ही ख़ौफ़ खाता है। हांलाकि तुम लोग अपने बाप-दादा की तरफ़ से किए गए वादों को तोड़ने पर चीख़ना चिल्लाना शुरू कर देते हो लेकिन रसूले ख़ुदा[स॰] से किए गए वादों को नज़रअंदाज़ किए जाने की तुम्हें कोई परवाह नहीं है।''

इमाम हुसैन[अ॰] इस हक़ीक़त को समझ रहे थे कि बनी उमय्या दीन का नाम लेकर लोगों पर हुकूमत कर रहे हैं और जाहिलियत की रस्मों को इस्लाम के लिबास में पेश करके उन्हें फिर समाज में राएज करना चाहते हैं। उन्होंने उन चीज़ों को हराम कर दिया है जिन्हें ख़ुदा ने हलाल किया था और उन चीज़ों को जिन्हें ख़ुदा ने हराम किया था हलाल कर दिया है।

इसलिए इमाम हुसैन[अ॰] ने यज़ीद की मुख़ालिफ़त के मक़ासिद को यूं बयान फ़रमाया :- ''मैं अपने नाना की उम्मत की इस्लाह के लिए क़ियाम कर रहा हूं। अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना और अपने नाना रसूल अल्लाह[स॰] की सीरत पर अमल करना चाहता हूं।''

ऐसे माहौल में जहां दीन को तहरीफ़ के ख़तरों का सामना था इमाम हुसैन इब्ने अली[अ॰] ने अपने लहू की धार से जाहिलियत के पैकर पर कारी ज़रबें लगाईं और हक़ व बातिल के दरमियान एक हद बना दी। आज दुनिया का कोई भी अक़्लमंद और इंसाफ़ पसंद इंसान चाहे वह किसी भी मुल्क व क़ौम और मसलक व मज़हब से हो, जब करबला की तारीख़ को पढ़ेगा तो उसे ऐसे रौशन चिराग़ दिखाई देंगे जिनकी रौशनी में शाहराहे हिदायत और सफ़ीनए नजात तक आसानी के साथ पहुंचा जा सकता है।

मेरी ज़िंदगी का सफ़र

मोहतरमा रोशनी हुसैनज़ादे एक बड़ी डायनमिक पर्सनालिटी वाली ख़ातून हैं। स्कॉटलेंड में पैदा होने और वहीं पलने वाली ये ख़ातून पैदाइशी तौर पर नाबीना हैं लेकिन ख़ुदा ने उन्हें एक ऐसा नूर इनायत किया है जिसकी वजह से उनकी पूरी ज़िंदगी बदल गई है और हम सब के लिए एक नमूना है। मोहतरमा रोशनी इस वक़्त नए शिया होने वाले लोगों की मदद करने वाले एक ऑन-लाइन ऑर्गेनाइज़ेशन की डायरेक्टर, शिया कोसिंल फ़ॉर स्कॉटलेंड की वॉइस-चेयरमैन और अहलुल्बैत टी. वी. की रेगुलर प्रेज़ेंटर और कंट्रीब्युटर हैं। हमारी ख़ास गुज़ारिश पर आपने स्कॉटलेंड से अपनी ये स्टोरी 'मरयम' के लिए लिख कर भेजी है जिसे हम आप सब के लिए फ़र्ख़ से पेश कर रहे हैं...

■ रोशनी हुसैनज़ादे

मेरी पैदाइश एक मज़हबी ईसाई घराने में हुई थी। मगर मेरे पेरेंट्स कट्टर मज़हबी फ़ैमिली बैकग्राउंड से होने के बावजूद कोई बहुत ज़्यादा मज़हबी नहीं थे। हाँ, वह ये ज़रूर चाहते थे कि मैं चर्च जाऊँ और दीनी क्लासेज़ अटेंड करूँ जो कि मैं अटेंड करने लगी थी। अपनी बहुत कम उम्री से ही मुझे अपने घर वालों का दो तरह का रवैया खटकने लगा था क्योंकि वह लोग जिन अक़ीदों को मानते थे उसके बिल्कुल उलट ज़िन्दगी गुज़ारत थे। ठीक है कि हम में से कोई भी परफ़ैक्ट नहीं है लेकिन कुछ चीज़े तो बिल्कुल क्लियर होती हैं। जैसे अगर बाइबिल शराब पीने को मना करे तो क्या आप शराब पिएंगे?! बाइबिल ने शराब से रोका है और मेरे घर में हर एक शराब पीता था। ये सिर्फ़ एक मिसाल है वरना मेरे घर में ऐसे बहुत से काम होते थे और होते हैं जिनसे मज़हब की मुख़ालिफ़त होती है यानी मज़हब करने के लिए कहता है और हम नहीं करते या करने से रोकता है और हम करते हैं। बाइबिल की स्टडी करते वक़्त मैंने अपने घर वालों ख़ास कर अपनी नानी से इन चीज़ों के बारे में बहुत बार पूछा था लेकिन उन्होंने कभी कोई तसल्ली बख़्श जवाब नहीं दिया बल्कि ऐसा लगता था जैसे वह लोग तो मेरे सवालों को सुनने लायक़ ही नहीं समझते। जैसे-जैसे मेरे सवाल दीन के बारे में और गहरे होते जा रहे थे वैसे-वैसे उन्हें और अनसुना किया जाने लगा था। मैं जानना चाहती थी कि क्या वाक़ई जनाबे ईसा ख़ुदा के बेटे हैं? मेरी समझ में ये बात आती ही नहीं थी कि ये कैसे हो सकता है और अगर ऐसा है तो इन दोनों में बड़ा कौन है, ख़ुदा या जनाबे ईसा? इस सवाल का भी मुझे कभी कोई सीधा जवाब नहीं दिया गया। उस वक़्त मेरी उम्र सिर्फ़ तेरह साल थी और इतनी कम उम्र में ही अब पहली बार मुझे अपने मज़हब पर शक होने लगा था।

स्कूल में अलग-अलग मज़हबों के बारे में पढ़ने से अब मेरी समझ में आने लगा था कि दुनिया में इसके अलावा और बहुत कुछ भी है जो मैं अपने घर में देख रही हूँ। जैसे ही मैंने अपने पैरेंटस को बताया कि मैं दूसरे मज़हबों की गहराई से स्टडी करना चाहती हूँ, वह भड़क गए और बहुत सख़्ती से मुझे ऐसा कुछ भी करने से रोक दिया। आगे जब भी कभी मैं इस टॉपिक पर बात करना चाहता थी तो मेरे घर वाले मुझे डराने- धमकाने लगते थे। जिससे मेरे दिल में एक तरह का डर बैठ गया और इसी डर ने मेरे दिल में ये ख़्याल भी भर दिया कि मेरी परवरिश बाक़ाएदा किसी अक़ीदे पर नहीं की गई है बल्कि मेरे घर वालों के बनाए हुए ही कुछ आइडियाज़ हैं जो मेरे दिमाग़ में भर दिए गए हैं। इस ख़्याल का पैदा होना था कि रिसर्च के बारे में मेरी प्यास और बढ़ गई।

मेरी नौजवानी के दिनों में मेरे एक अंकल दिल्ली में जॉब कर रहे थे। वह वहां से मेरे लिए कपड़े, चूड़ियां और इस तरह की दूसरी चीज़ें

लाया करते थे जिससे आहिस्ता-आहिस्ता मेरे अंदर हिन्दी सीखने का शौक़ हो गया। मेरी हिन्दी की टीचर एक हिन्दू ही थीं, इसलिए मैं उनके साथ मन्दिरों में जाना चाहती थी। धीरे-धीरे मैं हिन्दू मज़हब को पढ़ने लगी। इसके अलावा मैंने बौद्धीज़्म और एशिया के दूसरे स्कूल ऑफ़ थॉट्स की भी स्टडी की। एक लम्बे वक़्त तक ये सब मेरे लिए काफ़ी हो गया था। इस बीच मेरे एजेंडे में इस्लाम का कहीं कोई अता-पता नहीं था क्योंकि मुझे तो बताया और सिखाया ही ये गया था कि मुसलमान पिछड़े हुए, कट्टरपंथी और ज़ालिम होते हैं जो औरतों के साथ बहुत बुरा बर्ताव करते हैं और उन्हें बड़ा अजीबो-ग़रीब लिबास पहनने पर मजबूर करते हैं।

पन्द्रह साल की होते-होते मेरे अंदर अलग-अलग ज़बानों को सीखने के साथ-साथ एक ट्रेंड और पनपने लगा था और वह था रेडियो/ब्रॉडकास्ट जनर्लिज़्म। पन्द्रह साल की उम्र में ही मुझे बी. बी. सी. में जॉब मिल गई थी। इसके अलावा मैंने एशिया के कई दूसरे रेडियो नेट्वर्क्स के लिए भी काम किया था।

एक दिन मैं इंटरनेट पर एशियन फूड स्टोर को सर्च कर रही थी कि अचानक मुझे एक पोस्टर नज़र आया जिसपर लिखा था, **'रेडियो रमज़ान'** और इस रेडियो स्टेशन को वॉलंटियर्स की ज़रूरत थी। वैसे मुझे इस बारे में कुछ पता नहीं था कि ये कोई इस्लामी नेटवर्क है। बहरहाल मैंने अपनी सर्विसेज़ ऑफ़र कर दीं। जैसे ही मैं पहले दिन पहुंची, मेरे अंदर ज़लज़ला सा आ गया क्योंकि वहां सब मुसलमान थे और औरतें पूरे इस्लामी हिजाब में, जिन्हें अपने मज़हबी होने पर खुल्लम-खुल्ला फ़ख़्र भी था। मेरे लिए वहां कोई जगह नहीं थी। मेरी हालत देखने वाली थी लेकिन इसके बावजूद वहां हर एक मेरे वहां होने से बहुत खुश था। उन लोगों ने मेरे साथ बड़ा अच्छा रवैया अपनाया। वह सब के सब रोज़े से थे फिर भी उन्होंने मुझे चाय और खाने को दिया, मेरे हर तरह के सवालों के भी बहुत नर्मी और खुले दिल से जवाब दिए। इन लोगों के बीच रहकर पहली बार मुझे इस्लाम के बारे में कुछ जानकारी मिली और ये जानकारी उससे बिल्कुल अलग थी जो पहले से मेरे पास थी। बहुत जल्दी इस्लाम मेरे ईसाई बैकग्राउंड पर छा गया क्योंकि इस्लाम ने मेरे ऐसे बहुत से सवालों के जवाब दे दिए थे जो बहुत दिनों से ईसाई मज़हब के बारे में मेरे ज़ेहन में उठ रहे थे। जल्दी ही मैं उन लोगों के बारे में भी पढ़ने लगी जो ईसाई से मुसलमान हो गए थे। वैसे तो मुझे बहुत जल्दी ही एहसास हो गया था कि इस्लाम ही वह सच है जिसकी मैं तलाश में थी लेकिन मुझे इस सच्चाई को क़ुबूल करने में बहुत डर लग रहा था। मैं पूरी तरह समझ रही थी कि इस्लाम सिर्फ़ एक मज़हब ही नहीं है बल्कि ये मेरी पूरी ज़िन्दगी को बदल कर रख देगा और मैं इतना बड़ा रिस्क लेने के लिए खुद को तैयार नहीं पा रही थी। मेरे फ़ैमिली मिम्बर्स का रिएक्शन क्या होगा? क्या वह मुझे घर से निकाल देंगे? क्या मैं अपने सारे दोस्तों को खो दूंगी? क्या मैं ज़िन्दगी में इतने बड़े बदलाव को बर्दाश्त कर पाऊँगी?...मैं खुदा से हिदायत की दुआऐं मांगने लगी और यही नहीं बल्कि उसके साथ अपनी हिमाक़त की वजह से डील भी करने लगी...जैसे अगर मैं एक्ज़ाम्स में पास हो गई तो मुसलमान हो जाऊँगी...वग़ैरा.वग़ैरा

आख़िरकार मुझे यक़ीन हो ही गया कि इस तरह अब और ज़्यादा मैं सच्चाई से दूर नहीं भाग पाऊँगी और ३१ जनवरी १९७७ को रेडियो स्टेशन की अपनी दोस्तों के बीच कलेमा पढ़ ही लिया। उन सब ने मुझे गिफ़्ट दिए जिनमें एक बहुत खूबसूरत ब्राउन हिजाब भी था।

जज़बात और ईमान से कूट-कूट कर भरी हुई मैं अपने घर में उसी स्कार्फ़ को औढ़कर दाख़िल हुई, ये सब भूल कर कि मेरे पैरेंटस इस बारे में क्या सोचेंगे। जैसे ही उन सब ने मुझे देखा...घर में भौंचाल सा आ गया। हफ़्तों मुझे स्कूल जाने के अलावा कहीं आने-जाने की इजाज़त नहीं थी और ज़ाहिर है, हिजाब की इजाज़त तो बिल्कुल नहीं थी। घर के अंदर मुझे अपनी इस्लामी किताबों, स्कार्फ़ और नमाज़ की चीज़ों को बहुत छिपाकर रखना पड़ता था कि अगर मेरे पैरेंटस ने देख लिया तो छीन लेंगे। मुझे अपने मुसलमान दोस्तों को फ़ोन करने या उनका फ़ोन रिसीव करने से सख़्ती से रोक दिया गया था। उधर इस्लाम के बारे में स्टडी करना भी बहुत मुश्किल हो गया था क्योंकि न ही में किसी से मिल सकती थी और न ही कहीं आ-जा सकती थी।

आख़िरकार, कुछ दिनों के बाद ये बंदिशें उठ गईं लेकिन इस्लाम के बारे में उन सबकी नफ़रत जूँ की तूँ बाक़ी रही। मेरे पैरेंटस मुझे इसी तरह बर्दाश्त करते रहे, यहां तक कि मैं १८ साल की हो गई और अब मेरी मेन पढ़ाई भी पूरी हो गई थी। अब इसके बाद उन्होंने कह दिया कि अगर मुझे इसी नए रास्ते पर चलते रहना है तो बहतर है कि मैं घर छोड़कर कहीं और चली जाऊँ। ये सुनकर मेरी तो सांस रूकी की रूकी रह गई...अब कहाँ जाऊँगी...न मेरे पास जॉब है न पैसा और न सीनियर एजूकेशन...अब मैं क्या करूँगी? किस तरह ज़िन्दगी गुज़ारूंगी?...इस बीच मेरी मुलाक़ात एक नौजवान से हुई और उसने मुझे शादी का आफ़र दे दिया। ये नौजवान पाकिस्तान का था और बहुत टूटी-फूटी इंग्लिश बोलता था। उसके पास ब्रिटेन की सिटीज़न-शिप भी नहीं थी। वह मुझे शादी के लिए बिल्कुल अच्छा नहीं लगा लेकिन उस वक़्त सिर्फ़ वही एक रास्ता था जिस पर चलकर मैं इज़्ज़त के साथ अपने पैरेंटस के घर को खुदा हाफ़िज़ कह सकती थी। इसलिए मैंने उसके साथ शादी करने का फ़ैसला कर लिया। हम दोनों ने तीन साल एक साथ गुज़ारे, बहुत मुश्किल तीन साल...वह काम बहुत कम करता था और जब भी करता था तो सारा पैसा पाकिस्तान में अपनी फ़ैमिली के पास भेज देता था। जिसकी वजह से घर के ख़र्चों का बोझ भी मेरे सर पर आ गया। इस बीच मैंने काउंस्लिंग डिप्लोमा किया और मुसलमान औरतों की एक एन. जी. ओ. में जॉब करने लगी। साथ ही मुझे बी. बी. सी. में भी जॉब मिल गई।

हालात के इतने थपेड़े खाए थे कि अब मैं पहले वाली एक शर्मीली सी लड़की नहीं रह गई थी बल्कि एक कांफ़िडेंट जवान औरत में बदल चुकी थी। अब एक मुश्किल और आ खड़ी हुई थी। इस

सब के बीच मैं अपने इस्लाम को कहीं भूल गई थी। बाक़ाएदा नमाज़ भी नहीं पढ़ पा रही थी, हिजाब नहीं इस्तेमाल कर रही थी (जबकि कर सकती थी) और खुद को अपने अक़ीदे से बिल्कुल अलग पा रही थी। वह शुरूआत वाली चमक कहीं खो गई थी और अब बिल्कुल अपने शौहर की तरह हो गई थी। आख़िरकार तीन साल के बाद जब हमारी शादी टूटी तो ये बड़े ही मुश्किल हालात थे। जज़बाती तौर पर मैं पूरी तरह टूट चुकी थी। मैंने अपने समाज में ऐसा कभी भी और कहीं भी नहीं देखा था कि कोई किसी से शादी करे और सिर्फ़ इसलिए करे कि इसमें बस उसकी खुदग़र्ज़ी शामिल हो कि किसी तरह उसको सिटीज़न-शिप मिल जाए, जैसा कि मेरे इस शौहर को शादी के बाद मिल ही गई थी। मैंने सोचा कि अगर मुसलमान ऐसा ही आपस में एक दूसरे के साथ करते हैं तो मुझे उनमें से नहीं होना चाहिए था... मैंने खुद को इस नए समाज से बिल्कुल अलग कर लिया था। यहां तक कि दीन पर भी अमल नहीं कर रही थी। वैसे कहीं न कहीं मेरे अंदर अभी ईमान की कुछ रमक़ बाक़ी थी क्योंकि मैं अभी तक हलाल रिज़्क़ ही खा रही थी, शराब नहीं पीती थी और सोने से पहले दुआएं भी पढ़ती थी।

शादी के टूटने के बाद एक बार मेरे कुछ दोस्तों ने मुझे पाकिस्तान बुलाया ताकि हम सब वहां कुछ दिनों साथ रह सकें...वह कुछ दिन जो ढाई साल में बदल गए थे। ये वह वक़्त था जब वहां मीडिया इंडस्ट्री की शरूआत हो रही थी। मैंने भी वहां के एक बड़े सेटेलाइट चैनल में जॉब के एप्लाई कर दिया और जॉब मिल भी गई। इस चैनल में जॉब के दौरान मेरे बहुत से दोस्त भी बन गए थे जिनमें से बहुत सों के साथ मेरी दोस्ती आज भी रवाँ-दवाँ है और अच्छी बात ये है कि मेरे इन साथियों में से बहुत से अहलुल्बैत[अ०] के चाहने वाले शिया भी थे। जिस वक़्त मैं मुसलमान हुई थी उस वक़्त 'सुन्नी-शिया' मेरे लिए सिर्फ़ दो नाम थे, इसके अलावा और कुछ नहीं। मुझे तो ये भी नहीं पता था कि मैं क्या हूँ, सुन्नी या शिया? बहरहाल जल्दी ही मुझे शियों के बारे में बता दिया गया कि...ये अच्छे मुसलमान नहीं होते हैं, ये लोग मौहर्रम में ग़म मनाते हैं और इमाम हुसैन[अ०] की इबादत करते हैं, इनके यहां की कोई चीज़ नहीं खाना चाहिए और जैसे भी हो इनसे बच कर रहना चाहिए वग़ैरा-वग़ैरा।

एक दिन लंच के दौरान शिया-सुन्नी का मुद्दा उठ गया और मैं अपनी जिहालत की रौ में वह सब बक गई जो कुछ शियों के बारे में मुझे बताया गया था। किसी ने कुछ नहीं कहा और ज़्यादातर लोग मुझसे कुछ कहे बिना मेज़ छोड़कर उठ गए। लेकिन एक आदमी ने मुझसे बड़े नर्म लेहजे में पूछा कि मैंने ये सब बातें कहां

इमाम हुसैन[अ०] की सीरत

उस्ताद का एहतेराम

अब्दुर रहमान नाम के एक शख़्स ने इमाम के किसी एक बेटे को सूरए हम्द सिखाई तो इमाम ने उसके बदले में उसे हज़ार दीनार, बहुत सारे कपड़े, ढ़ेर सारे जेवरात और सोना और ज़िन्दगी के बहुत सारे सामान अता किए जिसे देखकर उस शख़्स को बहुत तअज्जुब हुआ तो आपने फ़रमाया : तुम्हारे काम कि अज़मत के मुक़ाबले यह चीज़ें कुछ भी नहीं हैं।

बेसहारा लोगों का सहारा

इमाम हुसैन[अ०] बेसहारा लोगों की बहुत मदद करते थे और बख़्शिश करते वक़्त उनकी इज़्ज़त का इतना ख़्याल रखते थे कि देते वक़्त ख़ुद शर्मिन्दगी का एहसास करते थे।

लोगों के दिलों का ग़म दूर करना

इमाम[अ०] उसामा बिन ज़ैद के घर अयादत के लिए आये तो उसे परेशान हाल देखा, उसकी परेशानी की वजह पूछी तो उसामा ने एक आह भरी और कहा कि हमारे ऊपर दूसरों के हक़ हैं और मैं कर्ज़दार हूं चाहता हूं कि अपनी ज़िन्दगी में ही लोगों के हक़ अदा कर दूं और कर्ज़ की हालत में दुनिया से ना जाऊं। इमाम[अ०] ने हुक्म दिया उसके सारे कर्ज़ आपके माल से अदा कर दिए जाएं जिससे उसकी सुकून से मौत आ गई।

खुलेआम और छुपाकर इन्फ़ाक़ करना

इमाम[अ०] ग़रीबों, यतीमों, बेवाओं और महरूमों की ज़रूरतों को हमेशा पूरा करते थे और इमाम अली[अ०] की तरह रात की तारीकी में मदद करते थे। लोगों की ज़रूरत के सामान और खाने की चीज़ें अपनी पीठ पर उठाकर रात में लोगों के दरवाज़े पर ले जाते थे जिसकी वजह से आप की पीठ पर जगह-जगह निशान बन गए थे, जब इमाम सज्जाद[अ०] से उन निशानात के बारे में पूछा गया तो आपने इस राज़ से पर्दा उठाया कि रात में पीठ पर सामान लादकर ग़रीबों की मदद करने की वजह से निशान पड़े हैं। इमाम हुसैन[अ०] के बाद इमाम सज्जाद[अ०] की भी सीरत यही थी।

अल्लाह का ख़ौफ़

इमाम हुसैन[अ०] के दिल में अल्लाह का ख़ौफ़ और उसकी अज़मत का एहसास इतना ज़्यादा था कि जब नमाज़ और अल्लाह की बारगाह में हाज़िर होने का वक़्त होता था और वज़ू करते थे तो आपके चेहरे का रंग बदल जाता था और आपके जिस्म थरथराने लगता था। किसी ने इसकी वजह पूछी तो इमाम[अ०] ने फ़रमाया, "क़यामत के दिन सिर्फ़ वह लोग सुकून से होंगे जो दुनिया में अल्लाह से ख़ौफ़ रखते हैं।"

ख़ानदानी शराफ़त

इमाम हुसैन[अ०] इज़्ज़त शराफ़त और आज़ादगी का एक अज़ीम नमूना थे आशूरा के दिन और उससे पहले इमाम की सिफ़तें इस तरह ज़ाहिर हुई कि उसे देखकर इंसान तअज्जुब में पड़ जाता है। इमाम ने सहरा में किन हालात में हुर के लश्कर को सैराब किया। शबे आशूर शिम्र जैसे ज़ालिम को इमाम ने तीर मारने से मना कर दिया यह कहते हुए कि हम जंग का आगाज़ नहीं करते और आशूर के दिन इमाम की तमाम अज़ीम इंसानी सिफ़तें इस तरह ज़ाहिर हुई कि उन्हें देखकर अम्बिया और फ़रिश्ते भी हैरत में पड़ गए।

सुनी हैं। जैसा ही मैंने कहा कि ये तो मुझे मेरे मज़हबी टीचरों ने बताई हैं तो वह भौंचक्का सा रह गया और कुछ लम्हों के बाद पूछा कि क्या शियों के बारे में मैंने खुद से कोई स्टडी की है? मैंने सर हिला दिया कि नहीं...बाद मैं जब मैंने इस बारे में सोचा तो मुझे बहुत उलझन हुई। मैंने हमेशा एक-एक चीज़ को खुद से स्टडी करके, समझ के और सच को जान के क़ुबूल किया था... .इस मामले में मुझे क्या हो गया था?! बिना जाने-बूझे उस फ़िरक़े के बारे में इतना ग़लत-सलत कह गई...

उस दिन के बाद मैंने खुद से वादा किया कि सबसे पहले अब शिया फ़िरक़े के बारे में स्टडी करूंगी और आगे से किसी भी चीज़ के बारे में हवा में कोई बात नहीं करूंगी।

अब इसके बाद जो मैंने स्टडी शुरू की तो बिल्कुल एक नई दुनिया मेरे सामने आ गई... यही तो अस्ली इस्लाम था लेकिन मेरे पिछले वाले इस्लाम से बिल्कुल अलग। ये वाला दीन एक ज़िन्दा दीन था, हक़ीक़तों और सच्चाईयों की बात करता था और पिरेक्टिकल भी था। अहकाम और क़ानून भी ऐसे जो अक़्ल में आने वाले, शाइस्ता और ऐसे जिन पर आसानी से अमल किया जा सके...कहीं कोई शिद्दत नहीं, हर जगह बैलेंस...हर सवाल का जवाब मौजूद...कहीं कोई हलकापन नहीं। मैं तो जैसे इस नए फ़िरक़े को पाकर मदहोश सी होकर रह गई थी...अब मेरा एक-एक दिन इसी फ़िरक़े के बारे में स्टडी करते हुए गुज़र रहा था। न जाने कितनी रातें मैंने स्टडी करते हुए बिता दीं थीं। यहां तक कि पाकिस्तान से स्कॉडलेंड वापस आकर भी पढ़ती ही रही।

आख़िरकार जैसे ही मैं करबला के उस दर्दनाक वाक़िए तक पहुंची तो मेरी आंखों से आंसुओं का एक समन्दर सा रवां हो गया, मुझे एक ऐसे ग़म और दर्द का एहसास हुआ कि उससे पहले कभी हुआ ही नहीं था। करबला के बारे में अब मेरे पास कहने और सुनने को बहुत कुछ था। मुझे वह वक़्त आज भी याद है जब मैंने बीबी ज़ैनब[अ] के बारे में पढ़ा था कि किस तरह उन्होंने दीन के लिए अपने पर्दे को भी क़ुर्बान कर दिया था, वही पर्दा कि जिसकी वजह से आज मैं और मेरी जैसी दूसरी सारी मुसलमान औरतें इज़्ज़त के साथ इस्लामी हिजाब में रह सकती हैं। करबला की तारीख़ का ये हिस्सा पढ़कर मुझे बहुत रोना आया। मुझे आज भी वह दिन याद है जब मैंने लन्दन में रहने वाले अपने एक दोस्त से कहा था कि वह मेरे लिए कुछ हेड-स्कार्फ़ भेज दे...जिस पर वह बहुत देर तक हंसता रहा था और कहा था, "तुम्हारे लिए? हिजाब...तुम इनका क्या करोगी? क्या घर की दीवारों पर टांगोगी?" उसके वह अल्फ़ाज़ थे तो बहुत कड़वे लेकिन उसने सच कहा था क्योंकि में दिखने में बहुत कम मुसलमान दिखती थी। मेरे आस-पास से गुज़रने वाला या मुझसे बात करने वाला कोई भी अन्दाज़ा नहीं लगा सकता था कि मैं भी एक मुसलमान हूँ क्योंकि मैंने हर चीज़ को बड़ा हलका लिया था और जो सच्चा रास्ता अल्लाह ने मुझे मेरी नौजवानी में दिखाया था, मैं उस पर सही से चल नहीं सकी थी।

मुझे बड़ी शर्मिंदगी हो रही थी लकिन मुझे पता था कि अब सब कुछ बहुत जल्दी बदल जाने वाला है, हमेशा के लिए...मैंने अपने शहर में एक शिया सेंटर भी तलाश कर लिया था जहां एक मौलाना की निगरानी में स्टडी शुरू कर दी थी। मौलाना ने मुझे मेरी पिछली सख़्त और मुश्किल ज़िन्दगी के बारे में काफ़ी कुछ समझाया और एक बिल्कुल नई ज़िन्दगी शुरू करने का रास्ता दिखाया। इस बीच लंदन से मेरे लिए हिजाब भी आ गया था जिसके बाद से फिर कभी मैंने हिजाब नहीं छोड़ा। ये २००५ की बात है जिसके बाद से अब तक बहुत कुछ बदल गया है। आज मैं एक नए शिया होने वाले लोगों को सपोर्ट करने वाले एक ऑन-लाइन ऑग्रेनाइज़ेशन की डायरेक्टर, शिया कोसिंल फ़ॉर स्कॉटलेंड की वॉइस-चेयरमैन और अहलुल्बैत टी. वी. की रेगुलर प्रेज़ेंटर और कंट्रीब्युटर हूँ। आपको ये भी बता दूँ कि मैं पैदाइशी तौर पर ना-बीना हूँ और मुस्लिम माजूर औरतों के लिए भी बहुत कुछ कर रही हूँ। मैंने एक ऐसे ऑग्रेनाइज़ेशन को बनाने में भी मदद की है जिसके तहत ये सारे काम किए जा सकते हैं। हम इस ऑग्रेनाइज़ेशन के तहत लोगों को बताते हैं और ट्रेनिंग देते हैं कि माजूर लोगों और आम लोगों में कोई फ़र्क़ नहीं होता है, दोनों बराबर हैं। ये ऑग्रेनाइज़ेशन ना-बीना लोगों के लिए इस्लामी किताबों का ब्रेल और आडियो फ़ार्मेट में ट्रांस्लेशन भी करता है।

इधर आख़िर में ख़ुदा वंदे करीम ने मेरे ऊपर एक बहुत बड़ा करम ये भी किया है कि मुझे एक बहुत नेक शौहर से नवाज़ा है जो मेरे दीन, अक़ीदे और जज़्बात में पूरी तरह मेरा साथ देते हैं और इस सच्चे और सीधे रास्ते पर चलने में मेरी मदद करते हैं।

अब ऐसा एक दिन भी नहीं गुज़रता है जब मैं अपने पालने वाले का शुक्र अदा न करती हूँ क्योंकि उसने मुझे बेहद और अनगिनत नैमतों से नवाज़ा है। मैंने बहुत सी ग़लतियां की थीं और तक़रीबन इस्लाम मेरे हाथ से निकल ही गया था लेकिन ख़ुदा के फ़ज़्ल से मैं एक बार फिर सीधे रास्ते की तरफ़ लौट आई हूँ।

...अगर मेरी इस कहानी से आप कुछ लेना चाहती हैं तो वह ख़दा वंदे करीम का फ़ज़्ल, उसका करम और उसकी मेहरबानी होना चाहिए। ज़िन्दगी हमें कहां लेकर जाएगी, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, ख़ुदा हमेशा हमारे साथ है... अपने क़रीब बुलाने को और ऐसा बनाने को कि जिस पर हम फ़ख़्र कर सकें।

एक आख़िरी बात जो मैं आप सब से ज़रूर कहना चाहूँगी वह ये है कि सिर्फ़ नाम के लिए मुसलमान होना, ख़ास कर शिया होना कोई कमाल की बात नहीं है। कमाल तो ये है कि हम ऐसे हों कि हमारे अमल और हमारी ज़िन्दगी के एक-एक पहलू से हमारा ईमान और अक़ीदा झलकता हो। इमाम हुसैन[अ] ने जब करबला के मैदान में पुकारा था कि 'कोई है जो मेरी मदद करे' तो ये उन्होंने अपने उन साथियों से नहीं कहा था जो शहीद हो चुके थे बल्कि इमाम[अ] ने ये हम सब से कहा था ताकि देख सकें कि हम उनके पैग़ाम को किस हद तक आगे ले जा सकते हैं, हर ज़माने के लोगों को इमाम की शहादत का पैग़ाम किस क़द्र पहुंचा सकते हैं...हमें सिर्फ़ ज़बान से अहलुल्बैत[अ] का चाहने वाला होने के बजाए अपने अमल से भी साबित करना चाहिए कि वाक़ई हम इन अज़ीम हस्तियों के मानने वाले हैं। यही वह रास्ता है जिसपर चलकर हम कामयाब हो सकते हैं।

शरई एहकाम

पाक करने वाली चीज़ें

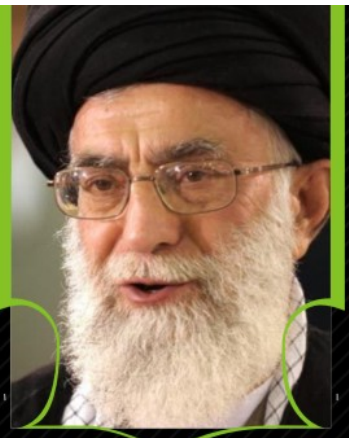

मैं और समीना आज आगरा से लखनऊ वापस आ रहे थे। ट्रेन में बैठते ही समीना शुरू हो गई। बोली, "लखनऊ से आते वक़्त तुमने मुझे नजिस चीज़ों के बारे में बताया था और उस सेशन में मुझे बड़ा मज़ा आया था। अब तुम मुझे यह बताओ कि नजिस चीज़ों के बारे में तो जान लिया। पाक चीज़ें कौन-कौन सी होती हैं और कैसे पाक किया जाता है। तुमने यह भी बताया था कि जब कोई पाक चीज़ किसी नजिस चीज़ से मिल जाती है तो नजिस चीज़ उस पाक को भी नजिस कर देती है। मुझे सबसे पहले यह बताओ कि इस नजिस चीज़ को कैसे पाक किया जा सकता है? मैंने कहा, "नजिस चीज़ों को पानी से पाक किया जा सकता है। इसलिए हमारी आज की बातचीत पानी से शुरू होगी।

पहली पाक करने वाली चीज़ पानी है और पानी दो तरह का होता है। मुतलक़ पानी और मुज़ाफ़ पानी।

समीना ने पूछा, "मुतलक़ पानी कौन सा होता है?"

"मुतलक़ यानी खालिस पानी। ये वह पानी होता है जिस को हम सब पीते हैं और जिससे खेतों की सिंचाई होती है। जैसे समन्दर का पानी, दरियाओं और नहरों का पानी, कुंओं, तालाबों, बारिश और नलों का पानी। अगर पानी में थोड़ी सी मिट्टी और रेत भी मिली हो तो फिर भी वह पानी, मुतलक़ यानी खालिस ही कहलाता है, जैसे नदी और नहरों का पानी वग़ैरा।" मैंने कहा।

"अच्छा मुज़ाफ़ पानी कौनसा होता है?" समीना ने पूछा।

'मुज़ाफ़ पानी' बोलते वक़्त जब किसी दूसरे लफ़्ज़ को पानी की तरफ जोड़ते हैं तो आसानी से समझ में आ जाता है कि मुज़ाफ़ पानी किसे कहते हैं जैसे कहा जाए कि गुलाब का पानी, अनार का पानी, अंगूर का पानी, गाजर और तरबूज़ का पानी और दूसरी चीज़ों से निचोड़ा हुआ पानी और जैसा कि तुमने देखा कि हमारा मतलब यहां उस पानी से नहीं है जिससे हम नजासत को दूर करते हैं और पीते हैं। जबकि इस अनार या अंगूर वग़ैरा के पानी से हम निजासत को दूर नहीं कर सकते।" मैंने जवाब दिया।

मुतलक़ पानी भी दो तरह का होता है:

1- कसीर

2- क़लील

"ये कौन से पानी होते हैं?"

"कसीर पानी वह पानी होता है जो निजासत के गिरने से उस वक़्त तक नजिस नहीं होता जब तक कि उसका रंग, बू या मज़ा न बदले और क़लील पानी वह होता है जो निजासत के मिलते ही नजिस हो जाए चाहे उसके रंग, बू या मज़े में से कोई भी न बदले।"

"एक चीज़ और कि खुद कसीर पानी भी कई तरह का होता है:

1- कुर पानी

कुर पानी उस पानी को कहते हैं जो तक़रीबन 384 लीटर हो जैसे वह पानी जो शहर की बड़ी-बड़ी टंकियों से हमारे घरों में पहुंचता है या वह पानी जो मोटर वग़ैरा से खींचा जाता है, उन टंकियों का पानी जो हमारे घरों की छतों पर लगी होती हैं। बस शर्त यह है कि या इनमे कुर से ज़्यादा पानी हो या यह इस्तेमाल के वक़्त पानी के एसे सोर्स से जुड़ी हुइ हों जो कुर भर हो और टंकियों से पानी पाईप के ज़रिए आता रहे और उसकी धार भी न टूटे।

2- कुंए का पानी

3- जारी पानी जैसे नहरों, नदियों और चश्मों का पानी वग़ैरा।

4- बारिश का पानी लेकिन उस बारिश का पानी जो मूसलाधार हो रही हो।

"और क़लील पानी क्या होता है?" तड़ से समीना ने पूछा।

"वह छोटे हौज़ों, गड्ढों या बर्तनों वग़ैरा का ठहरा हुआ पानी (कुंए के अलावा) जो एक कुर से कम हो, उसको क़लील पानी कहते हैं यानी कम पानी। यह तो तुम जान ही चुकी हो कि यह सारे पानी निजासत के मिलते ही नजिस हो जाते हैं।" मैंने कहा।

"अच्छा बहन! यह और बताओ कि मुज़ाफ़ पानी का क्या हुक्म है?"

"मुज़ाफ़ पानी निजासत के मिलते ही नजिस हो जाता है चाहे वह ज़्यादा हो या कम जैसे कि यह दूसरे मुज़ाफ़ पानी की तरह है जैसे दूध, तेल, सीरप वग़ैरा निजासत के मिलते ही नजिस हो जाते हैं। ये भी ध्यान रहे कि हर क़लील पानी जैसे ही कसीर पानी से मिल जाता है वह भी कसीर हो जाता है और उसे भी कसीर पानी कहा जाता है। इस तरह छोटी टंकियों मे अगर नल से पानी आ रहा हो तो वह कसीर के हुक्म में है, और वह बालटी या टब जो बाथ रुम में रखे जाते हैं अगर उनमें नल से या किसी बड़ी टंकी से पानी आ रहा हो तो वह कसीर के हुक्म में है। यह सारे पानी उस वक़्त तक कसीर हैं जब तक कि कुर से मिले हों।"

समीना बोली, "अगर टंकी के रुके हुए पानी में खून की कुछ बूंदें गिर जाएं और टंकी का पानी कुर भर हो तो क्या पानी नजिस हो जाएगा?"

"पानी नजिस नहीं होगा। हां अगर कुर भर पानी का रंग ख़ून की वजह से बदल जाए तो फिर नजिस हो जाएगा।"

"अगर छोटे बर्तन में गिर जाए तो उसका क्या हुक्म है?"

"बर्तन और पानी दोनों नजिस हो जाएंगे।" उसके इस बचकाने सवाल पर मैंने हंस कर कहा।

"अच्छा! अगर हम जारी पानी को उस पर खोल दें और पानी अपनी पिछली हालत पर

पलट जाए तो उसका क्या हुक्म है?''

मैंने कहा, ''बर्तन का पानी पाक हो जाएगा लेकिन अगर जारी पानी को बंद कर दिया जाए और दूसरी बार उसका रंग बदल जाए तो वह फिर से नजिस हो जाएगा जैसा कि जल्दी ही तुम्हें किसी मौके पर बताऊँगी कि अगर कोई बर्तन नजिस हो जाए तो जब तक उसको तीन बार न धोया जाए वह पाक नहीं होगा।''

''अगर लोटे का पानी किसी निजासत पर पड़े तो क्या लोटे का पानी नजिस हो जाएगा?''

''बिल्कुल नही।'' मैंने कहा।

कुछ देर सोचकर समीना ने पूछा कि बारिश का पानी किस तरह नजिस चीज़ों को पाक करता है?

मैंने कहा कि जब बारिश नजिस चीज़ों पर क़तरे-क़तरे गिरे और उन चीज़ों में बारिश का पानी जज़्ब हो जाए तो नजिस चीज़ें पाक हो जाती हैं, चाहे ज़मीन, बर्तन, कपड़ा और फ़र्श वग़ैरा नजिस ही क्यों न हों। लेकिन ख़्याल रहे कि बारिश का इन पर बरसना शर्त है यानी बारिश के कुछ क़तरों से ये चीज़ें पाक नहीं होंगी।

''अच्छा अगर इन चीज़ों पर सिर्फ एक बार बारिश का पानी बरसे तो क्या ये चीज़ें पाक हो जाएंगी?''

मैंने कहा, ''हां! पाक हो जाएंगी लेकिन पेशाब से नजिस होने वाले बदन और कपड़े पर दो बार बारिश शर्त है।''

''क्या बारिश से नजिस पानी भी पाक हो जाता है?'' समीना ने सवाल किया।

''हां! जब वह नजिस पानी बारिश के पाक पानी में मिल जाए।'' मैंने कहा।

''अच्छा अब ये बताओ कि नजिस चीज़ों को क़लील और कसीर पानी से कैसे पाक किया जाता है?'' समीना ने पूछा तो मैंने कहा, ''किसी नजिस चीज़ को पाक करने के लिए उसे पानी से एक बार धोना ज़रूरी है चाहे वह पानी क़लील हो या कसीर, लेकिन क़लील पानी से धोने में ज़रूरी है कि नजिस चीज़ से उस नजिस चीज़ को पाक करने वाला पानी अलग हो जाए यानी उसको निचोड़ दिया जाए।''

''क्या इस तरीक़े से तमाम नजिस चीजें पाक हो जाती हैं?'' उसने पूछा।

''हां! सिवाए कुछ चीज़ों के जो ये हैं:

1- वह बर्तन जो शराब से नजिस हो गए हैं जैसे ग्लास वग़ैरा। इसको तीन बार धोना ज़रूरी है।

2- वह बर्तन कि जिसमें चूहा गिर कर मर जाए या सूअर उसको चाट ले। इसको सात सात बार धोना ज़रूरी है।

3- वह चीज़ें जो दूध पीने वाले ऐसे बच्चे के पेशाब से नजिस हो गई हों जो अभी गिज़ा नहीं

कट गईं शाखें तेरी छाओं मगर बाक़ी है।
तू ज़माने में निराला ही शजर है अब्बास

आज तक रंग जो पानी का है नीला-नीला
ये तेरे एक तमाचे का असर है अब्बास

हम जो शोलों पा तेरा लेके अलम जाते हैं
ऐसा लगता है कि फूलों का सफ़र है अब्बास

थे वह यूसुफ़ कि हुए जिन पे सितारे क़ुरबान
जिस पे क़ुरबान है सूरज वह क़मर है अब्बास

छुप गया शाम के बादल में वफ़ा का सूरज
अब तेरी ज़ात से उम्मीदे सहर है अब्बास

तेरी नज़रों में कहां वक़्अते ज़र है अब्बास
तेरे रहवार का कफ़, रश्के गोहर है अब्बास

तेरे चहरे को मैं महताब कहूं तो कैसे
तेरे क़दमों का निशां रश्के क़मर है अब्बास

नाम लेते ही मेरी मुश्किलें दम तोड़ गईं
तू तो क्या नाम का तेरे ये असर है अब्बास

हाकिमे शाम तेरा तख़्ते हुकूमत क्या है
आग पानी में लगा दे वह शरर है अब्बास

जब से देखा है तुझे ऐ बनी हाशिम के क़मर
रात सोता नहीं बेचैन क़मर है अब्बास

करबला

नॉन-मुस्लिम स्कालर्स की नज़र में

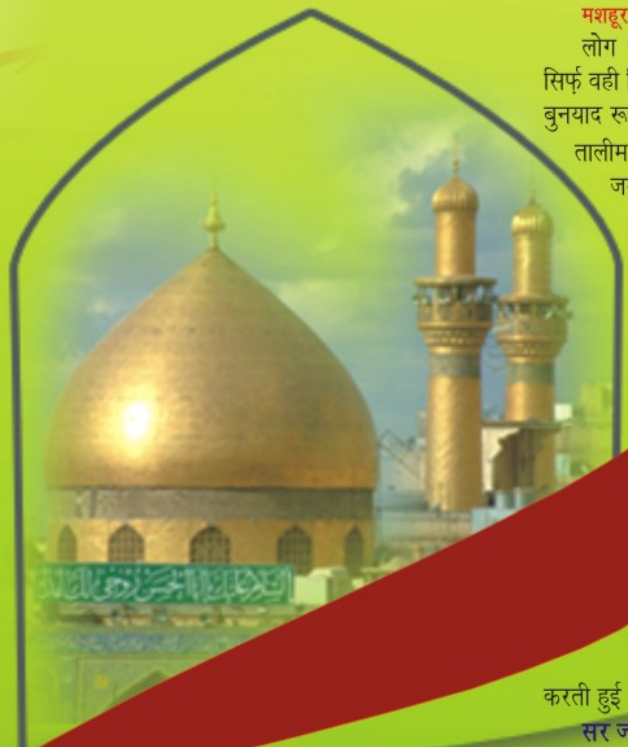

■ सै. साद हैदर ज़ैदी

वाशिंगटन औरंग

10 मोहर्रमुल हराम, 61 हिजरी, 3 अक्टूबर 685 ई० एक लाजवाब लड़ाई की तारीख़ है। कई हज़ार फ़ौज के साथ लड़ने में 72 आदमियों का ज़िंदा रहना मुहाल था। ज़िंदगी ख़त्म हो जाने का पूरा पूरा यक़ीन था। बहुत आसानी से हज़रत हुसैन[अ०] यज़ीद से उसकी तमन्ना के मुताबिक़ बैअत करके अपनी जान बचा सकते थे मगर इस ज़िम्मेदारी के ख़्याल ने जो एक मज़हबी रहनुमा की तबीयत में होती है, इस बात का असर न होने दिया और आपको निहायत सख़्त मुसीबत और तकलीफ़ पर भी एक बेमिस्ल सब्र के साथ क़ाएम रखा। छोटे-छोटे बच्चों का क़त्ल, ज़ख़्मों की तकलीफ़, अरब की धूप और इस धूप में ज़ख़्म और प्यास यह ऐसी तकलीफ़ें थीं जो सलतनत के शौक़ में किसी आदमी को सब्र के साथ अपने इरादे पर क़ाएम नहीं रहने देतीं।

कारलाईम

आथर ऑफ़ हीरोज़ एण्ड हीरोवर शिप

आइए हम देखें कि वाक़ेए करबला से हमें क्या सबक़ मिलता है। सबसे बड़ा सबक़ यह है कि करबला के शहीदों को ख़ुदा का कामिल यक़ीन था। इसके अलावा उनसे क़ौमी ग़ैरत का बेहतरीन सबक़ मिलता है जो किसी और तारीख़ से नहीं मिलता।

वह अपनी आंखों से इस दुनिया से बेहतर दुनिया को देख रहे थे। एक नतीजा यह भी हासिल होता है कि जब दुनिया में गुनाह और ग़ज़ब वग़ैरा बहुत होता है तो ख़ुदा का क़ानून क़ुरबानी मांगता है। इसके बाद तमाम राहें साफ़ हो जाती हैं।

आरथर एन० वसटन

(सी०आई०ए०)

हुसैन में सब्र और अख़लाक़ के दो बड़े कमाल मौजूद थे जो आम इंसानों में नहीं पाए जाते। इसलिए हुसैन[अ०] की ज़ात ख़ुद एक मोजिज़ा है। हुसैन[अ०] की बहादुरी और शुजाअत की मिसाल शायद ही दुनिया कभी पेश कर सके। दुनिया की क़ौमों की तारीख़ कभी कोई ऐसा सूरमा पेश न कर सकी जो हज़ारों से अकेला लड़ा हो और अपनी ख़ुशी से मरने पर तैयार हो गया हो।

सर फ्रेडरक जे. गोल्ड

मशहूर यूरोपियन राइटर

लोग नए सिस्टम का ज़िक्र करते हैं लेकिन सिर्फ़ वही सिस्टम बाक़ी रहने के क़ाबिल है जिसकी बुनयाद रूहानियत पर हो। उन उसूलों पर जिनकी तालीम ख़ुद हुसैन[अ०] ने दी थी। यानी फ़र्दी, जमाअती, क़ौमी और इंटरनेशनल ज़िन्दगी में रवादारी, आज़ादी, हिफ़ाज़त और इंसाफ़ की तालीम। इस तरह के नए सिस्टम में सलतनत के हावी होने और ज़ुल्मो सितम का इमकान नहीं रहेगा बल्कि एक मिली जुली ज़िन्दगी होगी जो एक इंसानी व क़ौमी भाईचारे को क़ायम करेगी। दर हक़ीक़त इमाम हुसैन[अ०] उस इंसानी अक़्ल और समझ का आला नमूना हैं जो नफ़रत, जंग और ज़ुल्म की अंधेरी चार दीवारी से होती हुई रेगिस्तानों और समन्दरों को पार करती हुई अमन का पैग़ाम देती है।

सर जार्ज टाम्स

कौन है जो इमाम हुसैन[अ०] की हक़ व सच्चाई को बुलंद करने वाली इस लड़ाई की तारीफ़ किए बग़ैर रह सकेगा। दूसरों के लिए जीने का उसूल, कमज़ोरों और दुखियारों की मदद को अपनी ज़िंदगी का मक़सद बनाने की बेनज़ीर मिसाल हुसैन की शख़्सियत से ज़्यादा रोशन और कहीं नहीं मिल सकती। जिन्होंने अपनी और अपने महबूब अज़ीज़ों और साथियों की जान की बाज़ी लगा दी लेकिन एक ज़ालिम और ताक़तवर बादशाह के सामने सर झुकाने से मना कर दिया यानी हक़ व सच्चाई की हिफ़ाज़त और दूसरों की भलाई के लिए इमाम हुसैन[अ०] ने आज से तेरह सौ साल पहले अपनी जान दी थी लेकिन उनकी न ख़त्म होने वाली रूह आज भी दुनिया में बेशुमार इंसानों में मौजूद है और उनकी शहादत की पाकीज़ा याद हर साल मोहर्रम में ताज़ा की जाती है।

डा. क्रेस्टो फरडी विक्टर

मिशन हास्पिटल, मुंबई

मैंने इमाम हुसैन[अ०] की ज़िंदगी और उनके कारनामों की स्टडी बहुत गहरी नज़र से किया है। मैंने उनमें ख़ुदावन्दे यसू मसीह की सी मुहब्बत पाई

है।

अगर हज़रत मसीह को सूली पर चढ़ाया गया तो इमाम हुसैन[अ०] का सर नेज़े पर बुलंद किया गया। मसीह को भी हक़ और सच्चाई के लिए सूली पर लटकाया गया और हुसैन[अ०] ने भी हक़ और सच्चाई के लिए अपनी और अपने बच्चों की जान क़ुरबान की। इसलिए ईसाई फ़िरक़ा हुसैन से जितनी भी मुहब्बत करे कम है। वह दुनिया में हक़ का बोल बाला करने के लिए पैदा हुए थे और उनके हाथ से हक़ का बोल बाला हो गया। अब जब भी किसी की ज़बान पर हक़ और बहादुरी, यह दो नाम आएंगे तो नामुमकिन है कि हुसैन का नाम न आए। हुसैन की क़ुरबानी की अज़मत का ये एक ज़िंदा सुबूत है।

काश दुनिया हुसैन[अ०] के पैग़ाम, उनकी तालीम और मक़सद को समझे और उनके नक़्शे क़दम पर चल कर खुद को सुधार सके।

जे. आर. राबिंसन

मेरी ज़िंदगी का ज़्यादातर हिस्सा हिस्टरी की स्टडी में गुज़रा है मगर जो कशिश और मज़लूमियत मुझे इस्लामी हिस्टरी के इस चेपटर में नज़र आई जो हुसैन और करबला के बारे में है वह कहीं नहीं देखी। मुसलमानों के नबी की वफ़ात के बाद उनके नवासे ने जो बहुत बड़ा कारनामा अंजाम दिया वह इस्लामी तालीम की सच्चाई और हुसैन की अज़मत की बहुत बड़ी दलील है। हुसैन[अ०] ने सैंकड़ों मुश्किलों के बावजूद अपने उसूलों और इस्लामी सिस्टम ऑफ़ गर्वनेंस की हिफ़ाज़त की। एक ज़ालिम ताक़त के सामने खड़े होने में ज़रा भी झिझक महसूस नहीं की। बड़ी बहादुरी, बुर्जुगी और खुले दिल के साथ मुसीबतों का मुक़ाबला किया और अपने जांनिसारों के साथ शहीद हो गए।

पंडित गोपी नाथ अमन देहलवी

हुसैन[अ०] ने जो बात कही, सीधी सादी और सच्ची कही, उन्होंने चालबाज़ियों से काम न लिया। आख़िर हुसैन[अ०] और उनके साथी शहीद हो गए। अब यह सवाल पैदा होता है कि हार किसकी हुई? इसे दो जुम्लों में कहा जा सकता है कि हुसैन[अ०] के जिस्म की और यज़ीद के इरादों की। ज़ाहिर को देखने वाले इसे हुसैन[अ०] की हार कहें तो कहें हक़ देखने और बोलने वाला इसे हुसैन[अ०] की जीत ही कहेगा।

हुसैन इब्ने अली[अ०] को सलाम जो मुदब्बिर और हक़ परस्त थे।

हुसैन इब्ने अली[अ०] को सलाम जिन्होंनें इस्लाम को ख़तरों से बचा लिया।

हुसैन इब्ने अली[अ०] को सलाम जिन्होंनें अपनी जान देकर इंसानियत का पैग़ाम दुनिया को दिया।

प्रोफेसर राज कुमार शर्मा , लुधियाना

हुसैन[अ०] की ज़िन्दगी और मौत दोनों रश्क के क़ाबिल हैं और इंसानियत के लिए एक नमूना हैं। वह ज़िन्दा रहे तो एक पाकीज़ा इंसान की हैसियत से। अगर वह यज़ीद की बैअत करके उसे अपना ख़लीफ़ा तसलीम कर लेते तो दुनिया की कौन सी नेमत थी जो उनके क़दमों में न डाली जाती और वह कौन सा ओहदा था जो यज़ीद उन्हें न देता। इस सूरत में वह दुनयावी इक़तिदार और दौलत तो हासिल कर लेते लेकिन नेक नामी के साथ हमेशा की ज़िन्दगी से महरूम रह जाते।

उन्होंने यज़ीद की बैअत न की और दुनयवी इक़तिदार और दौलत और वक़्ती अमीरी और ओहदे और रियासत को ठोकर मार दी क्योंकि ऐसे शख़्स की बैअत उन जैसी बुलंद मरतबा हस्ती के शायाने शान न थी। वह उसके ख़िलाफ़ खड़े हो गए क्योंकि वह उन्हें एक ऐसे काम के लिए मजबूर कर रहा था जो इस्लाम की रूह का ख़ात्मा कर देने वाला था। उन्होंने अपनी रूह का ख़ात्मा गवारा कर लिया मगर अपने मज़हब का फ़ना होना गवारा न किया जिसका नतीजा यह हुआ कि न इस्लाम फ़ना हुआ और न हुसैन। हुसैन भी ज़िंदा हैं और इस्लाम भी।

प्रोफेसर बी. मजूमदार

एच. ओ. डी. हिस्टरी डिपार्टमेंट, पटना यूनिवर्सिटी

इमाम हुसैन[अ०] की अहम ज़िन्दगी का अहम सबक़ यह है कि बातिल को बहादुरी के साथ रोकना चाहिए। दूसरे लोग जब ख़ामोशी से यज़ीद के ज़ुलमों को बर्दाश्त कर रहे थे उस वक़्त इमाम हुसैन[अ०] ने उसके ख़िलाफ़ बहादुरी के साथ उठने का इरादा फ़रमाया। आपको अच्छी तरह अपने क़ौमी दुश्मन के मुक़ाबले में अपनी ज़ाहिरी ताक़त का इल्म था। मगर यह बात बनी उमय्या के ख़िलाफ़ एहतेजाज से आपको न रोक सकी। आपको ख़तरों का इल्म था मगर आपके लिए नामुमकिन था कि अपनी ज़िन्दगी में दुनयावी आराम की ख़ातिर बातिल से सुलह कर लेते।

परमील पीटर प्रीग

इमाम हुसैन[अ०] की तारीख़ी हैसियत हम पर एक बार और यह बात ज़ाहिर करती है कि कोई ख़ुदाई आवाज़ मौजूद है जिसके मुताबिक़ हर मुल्क के फ़र्द और क़ौम की रहबरी होती रहती है और उस का असर उन पर पड़ता है।

इमाम हुसैन[अ०] ने कामिल इंसानियत के नमूने को दुनिया में पेश करने में भरपूर हिस्सा लिया है। सब से अहम उनकी इस्लाही कोशिश है और वह बहादुरी है जिससे उन्होंने इस काम के पूरा करने में मुसीबतों का मुक़ाबला किया। वह समझते थे कि रूहानी सच्चाई को बालातर रखने में जो क़ुरबानी झेली जाती है उसकी अज़मत से इंसानी ज़िन्दगी की क़ीमत और बढ़ जाती है। इस बात में ख़ास माने हैं कि अगरचे खुदा के सिपाही अपने मक़सद हासिल करने के लिए माद्दी दुनिया में जंग करते हैं लेकिन चूंकि एख़्लाक़ी व रूहानी दुनिया माद्दी दुनिया की बुनयाद है और अख़्लाक़ी और रूहानी दुनिया माद्दी दुनिया की रहबरी कर सकती है। इसलिए इन अज़ीमुश शान इंसानों की हार भी कुछ दिनों के बाद माद्दी दुनिया में जीत की शक्ल में बदल जाती है।

इमाम हुसैन[अ०] हमें हक़ व सदाक़त के लिए जंग करना सिखाते हैं और यह भी सिख़ाते हैं कि इंसानों को ख़ुद ज़ातियात की वजह से नहीं बल्कि मज़लूमों के हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त और उन लोगों की हिफ़ाज़त के लिए लड़ना चाहिए जो बेइंसाफ़ी का शिकार हैं।

दहशतगर्दी

■ अहमद हुसैन ज़ैदी

आसमानी मज़हबों के मानने वाले इस बात पर ईमान रखते हैं कि हज़रत इब्राहीम[अ॰] एक बड़े नबी हैं। हांलाकि ईसाई उन्हें ईसाई और यहूदी उन्हें यहूदी कहते हैं मगर हम यह कहने पर मजबूर हैं कि हज़रत इब्राहीम[अ॰] न यहूदी थे और न ईसाई बल्कि हज़रत इब्राहीम[अ॰] मुसलमान थे क्योंकि डिक्शनरी के हिसाब से इस्लाम 'स-ल-म लफ़्ज़' से निकला है जिसके मायने सलामती और अमन के हैं। वैसे भी हर मज़हब सलामती और अमन ही का सबक़ देता है। यही वजह है कि खुदावंदे आलम ने अपने पसंदीदा मज़हब को इस्लाम ही का नाम दिया है। क़ुरआने मजीद ने एक दस्तावेज़ के तौर पर इस बात को सूरए आले इमरान की उन्नीसवीं आयत में इस तरह कहा है, **"अल्लाह के नज़दीक पसंदीदा दीन 'दीने इस्लाम' है।"**

खुदा ने ये भी इरशाद फ़रमाया है, **"कहते हैं ईसाई या यहूदी हो जाओ हिदायत पा जाओगे कहो हम मिल्लते इब्राहीमी पर हैं जो सही रास्ता है। वह मुश्रिक न थे।"** [1]

यानी क़ुरआन ने इंसानियत को साफ़-साफ़ खुदा का हुक्म सुना दिया है कि इस्लाम ही इब्राहीमी दीन है। इस्लाम नाम है सलामती, अमन और खुदा के सामने सर झुका देने का और इसी वजह से इसको पसंद किया गया है। इस बात को सामने रखते हुए यह बात बिल्कुल साफ़ हो जाती है कि 'एक सच्चा मुसलमान आतंकवादी नहीं हो सकता'।

खुदावंदे आलम ने हज़रत इब्राहीम[अ॰] के दीन को इस्लाम का नाम दे कर बाक़ी रखा और रसूले खुदा[स॰] पर इस दीन को पूरा किया।

खुदा ने दीन को बाक़ी रखने की ही बात नहीं की बल्कि अमन और सलामती के मुक़ाबले में दहशतगर्दी और आतंकवाद को बुरा भी कहा। इस बारे में खुदा ने क़ुरआन में नबी को मुख़ातब कर के कहा है कि जिन्होंने दीन में तफ़रक़ा डाला उनसे तुमहारा कोइ वास्ता नहीं।

यानी आयत ने साफ़ और खुले लफ़्ज़ों में कह दिया कि आतंकवादी न तो मुसलमान है और न रसूले खुदा[स॰] को उसका उम्मती होना पसंद है। सच ये है कि आतंकवादी के लिए किसी भी मज़हब में कोई जगह नहीं है या यूं कहिए कि आतंकवादी का कोई मज़हब नहीं होता।

अब सवाल ये पैदा होता है कि आतंकवाद की वजह क्या है? ताअज्जुब तो यह है कि तक़रीबन दो सौ मुल्क, यू.एन.ओ. की छतरी के नीचे जमा होकर भी इन सवालों का जवाब नहीं दे सके हैं। जबकि इस्लाम ने हर सवाल का जवाब दिया है और चौदह सौ साल पहले ही यह बात क़ुरआन में कुछ इस तरह महफ़ूज़ कर दी गई है, **"जिसने फ़साद में एक क़त्ल किया उसने तमाम इंसानियत को क़त्ल किया।"** [3] यानी नाहक़ क़त्ल करना, दहशतगर्दी और आतंकवाद है।

आतंकवाद की दो क़िस्में हैं: एक शख़्सी और दूसरी हुकूमती। शख़्सी किसी एक आदमी या कुछ आदमियों की तरफ़ से होती है और जब ऐसा होता है तो हुकूमत का क़ानून सामने आ जाता है। अदालत, जुर्म को तय करते हुए मुजरिम को सज़ा भी दे देती है। मगर समाजी और हुकूमती गुंडागर्दी या दूसरे लफ़्ज़ों में दहशतगर्दी पर समाज हमेशा सीना पीटता रहा है क्योंकि जुर्म की सज़ा तो मिलती है मगर जिसकी वजह से नाइंसाफ़ी होती है, उस पर नकेल नहीं कसी जाती और यह ख़लिश ज़ुल्म और आतंकवाद की एक लम्बी ज़ंजीर बना देती है।

जिस तरह शख़्सी आतंकवाद का दरवाज़ा अदालत बंद करती है बिल्कुल उसी तरह हुकूमती आतंकवाद का खातमा भी यू.एन.ओ. में ही हो सकता है। जहां एक मुल्क शिकायत करने वाला होता है और इंसाफ़ मांगता है लेकिन यू.एन.ओ. में रेज़ूलूशन तो पास होते हैं मगर उन पर अमल न होने की वजह से ये क़रारदादें बेनतीजा ही साबित नहीं होतीं बल्कि आतंकवाद को और ज़्यादा बढ़ा देती हैं। यही वजह है कि हुकूमती आतंकवाद हमारे ज़माने में अपने चरम पर है क्योंकि अदालतों और क़ानून की सुपरीमेसी बाक़ी नहीं रह सकी है और उधर यू.एन.ओ. सिर्फ़ ताक़त का पुजारी बन कर रह गया है। इस तरह इंसाफ़ का नाम और उसका असर कहीं नज़र नहीं आता। अगर यह सिलसिला फ़ौरन बंद न हुआ तो दुनिया का अमन ख़तरे में पड़ जाएगा।

1-बक़रा/135, 2-हज/78, 3-माएदा/32

आशूरा के आमाल

शबे आशूर के आमाल

इमामे जाफ़रे सादिक़[अ०] फरमाते हैं कि जो आदमी आशूर की रात इमाम हुसैन[अ०] की ज़ियारत पढ़े, गिरयाओ ज़ारी करते हुए रात बिताए और अल्लाह की इबादत करता रहे तो वह क़यामत के दिन करबला के शहीदों की तरह खून में शराबोर पहुंचेगा

शबे आशूर चार रकअत नमाज़ दो सलाम के साथ इस तरह पढ़ना मुस्तहब है:-

- पहली रकअत में **अलहम्द** के बाद दस बार **आ-य-तुलकुर्सी**
- दूसरी रकअत में **अलहम्द** के बाद दस बार **कुल हुवल्लाहु अ-ह़द**
- तीसरी रकअत में **अलहम्द** के बाद दस बार **कुल अऊजु बिरब्बिल फ़लक़**
- चौथी रकअत में **अलहम्द** के बाद दस बार **कुलअऊजु बिरब्बिन्-नास**

नमाज़ पूरी होने के बाद सौ बार **कुल हुवल्लाहु अ-ह़द** भी मुस्तहब है।

आशूरा के आमाल

इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] फ़रमाते हैं कि इस दिन जो शख़्स इमाम हुसैन[अ०] की ज़ियारत पढ़े, हज़रत की मुसीबत पर आंसू बहाए, अपने घर वालों और तमाम मिलने-जुलने वालों के सामने इमाम हुसैन[अ०] के मसाएब का तज़किरा करे, अपने घर में मजलिस करे, आपस में एक दूसरे से रो-रो कर मुलाक़ात करे और एक दूसरे को इस तरह पुरसा दे तो अल्लाह उसे बहुत सवाब देगा:

" अज़्-ज़-मल्लाहु उजू-रना व उजू-रकुम "

आशूर के दिन नीचे दिए गए आमाल बजा लाने की बहुत फ़ज़ीलत बयान हुई है:

1- बग़ैर रोज़े की नियत के फ़ाक़ा रखना और अस्र के कुछ देर बाद पानी से इफ़्तार करना।
2-पाकीज़ा कपड़े पहनना और गरेबान खुला रखना।
3-दुखी लोगों की तरह आस्तीनों को कोहनी तक चढ़ा लेना।
4-दिन चढ़े जंगल या घर की छत पर जाकर 2-2 रकअत करके 4 रकअत नमाज़ इस तरह पढ़ना:-

- पहली रकअत में **अलहम्द** के बाद **कुल या अय्युहल काफ़िरून**
- दूसरी रकअत में **अलहम्द** के बाद **कुल हुवल्लाहु अ-ह़द**
- तीसरी रकअत में **अलहम्द** के बाद **सूर-ए-अहज़ाब**
- चौथी रकअत में **अलहम्द** के बाद **सूर-ए-मुनाफ़िक़ून**

(यह सूरे याद न हों तो जो भी सूरे याद हों वह पढ़े)

5-नमाज़ के बाद इमाम[अ०] के रौज़े की तरफ़ मुंह करके सलवात भेजना और आपके कातिलों पर हज़ार बार इस तरह लानत करना:-

"अल्लाहुम्मल अ़न क़-त-ल-तल हुसैनि व असह़ाबिह"

6-जिस जगह खड़े हों उससे कुछ क़दम आगे बढ़ें और सात बार कहें:

इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन, रिज़न बि-क़-ज़ा-इही व तस्लीमन् लि अमूरिह।

इसके बाद अपनी जगह पर वापस होकर पढ़ें:

अल्लाहुम-म अज़्ज़िबिल फ़ज़्-र-तल्लज़ी-न शाक़्क़ू रसू-ल-क व हा-रबू औलिया-अक। व अ़-ब-दू ग़ै-र-क वस्-तह़ल्लू महारि-मक। वल-अनिल क़ा-द-त वल अत्बा-अ व मन का-न मिन्हुम फ़ख़्ब्बा व औ-ज़-अ म-अ़-हुम औ रज़ि-य बि फ़िअ़-लिहिम् लअ़नन कसीरा, अल्लाहुम-म व अज्जिल फ़-र-ज आलि मुह़म्मदिवं वज्अ़ल् स-ल-वा-त-क अलैहि व अलैहिम वस्तन्क़िज़्-हुम मिन ऐदिल मुनाफ़िक़ी-नल मुज़िल्लीन, वल क-फ़-रतिल जाहिदी-न वफ़्तह् लहुम फ़तह़ंय्यसी-र व-अतिह लहुम रौह़ंव व फ़-र-जन क़रीबा, वज्अ़ल लहुम मिल-ल-दुन्-क अ़ला अदुव्वि-क व अदुव्वि-हिम सुल्तानन् नसी-र।

फिर दुआ के लिए हाथ उठाकर आले मुहम्मद[अ०] के दुश्मनों को निशाना बनाकर कहे:

अल्लाहुम-म इन्ना कसीरम-मिनल उम्मति ना-स-बतिल मुस्तह-फ़िज़ी-न मिनल अइम्मति व क-फ़-रत बि कलि-मति व अ़-क-फ़त अ़लल-क़ा-दतिज़् ज़-ल-मति व ह-ज-रतिल किता-ब वस-सुन-न-त व अ़-द-लत् अनिल ह़बलैनिल्लज़ी-न अमर-त बि-ताअ़तिहि-मा

वत्तमस्सुकि बिहिमा फ़-अमाततिल हक़्-क़ व ह़ादत अनिल क़स्दि व मा-लअ-तिल अह़ज़ा-बि व ह़र्रफ़तिल किता-ब व क-फ़-रत बिल हक़्क़ि लम्मा जा-अहा व तमस-सकत बिल बातिलि लम्मा अ़-त-र-ज़हा व ज़य्यिअ़त् ह़क़्-क़-क व अज़ल्लत् ख़ल्-क़-क व क़-त-लत् अवला-द नबिय्य-क व ख़ि-य-र-त इ़बादि-क व ह-म-ल-त इल्मि-क व व-र-स-त हिकमति-क व वह़यि-क अल्लाहुम-म फ़-ज़ल-ज़िल् अक़दा-म अअ़दाइ-क व अअ़दाइ रसूलि-क व अहलिबैति रसूलिक्।

अल्लाहुम-म वख़्रिब दिया-र-हुम वफ़्लुल सिला-ह़-हुम व ख़ालिफ़ बै-न कलि-मति-हिम व फ़ुत्ता फ़ी अअ़ज़ा-दिहिम व अव-हिन कै-द-हुम वज़-रिब्-हुम बिसैफ़ि-कल क़ाति-इ़, वर-मि-हिम बि-ह-ज-रिकद्-दामिग़्, व तुम-म-हुम बिल बला-इ तम्मा, व क़ुम-म-हुम बिल अज़ाबि क़ुम्मा व अज़-ज़िब्-हुम अज़ाबन नुकरा व ख़ुज़्-हुम् बिस-सिनी-न वल मु-स-लातिल-लती अह़लक़्-त बिहा अअ़दा-अ-क इन-न-क जू-निक़्-मतिम-मिनल मुजरिमीन।

अल्लाहुम-म इन-न सुन-न-त-क ज़ा-इ-अ़-तुन व अह़का-म-क मु-अ़त-त-लतुन व इत-र-त नबिय्यि-क फ़िल अर्ज़ि हा-इ-मतुन अल्लाहुम-म फ़-अ-इ़निल हक़्क़ा व अह़-लहू अक़्-मि-इल बाति-ल व अह़-लहू व मुन-न अ़लैना बिन-नजा-ति वह-दिना इलल ईमानि व अ़ज्जिल फ़-र-जना वन-ज़िम-हू बि-फ़-र-जि अवलियाइ-क वज-अ़ल-हुम लना वुद्दा वज्अ़ल-न लहुम वफ़्दा।

अल्लाहुम-म व अहलिक मन ज-अ़-ल यौ-म क़ल्लिब-नि नबिय्यि-क व ख़ि-य-रति-क ई-दा, वस-तह़ल्-ला बिही फ़-र-जंव व म-रह़ा, व ख़ुज़ अख़ि-र-हुम कमा अख़ज़-त अव-व-ल-हुम व ज़ाइफ़् अल्लाहुम्मल अज़ा-ब वत्तनकी-ल अ़ला ज़ालिमि अहलिबैति नबिय्य-क व अहलिक् अश्या-अ़हुम व क़ा-द-त-हुम व अबरि हुमा-तहुम व जमा-अ़-त-हुम अल्लाहुम-म व ज़ाईफ़ स-ल-वा-त-क व रह़-म-त-क व ब-र-का-त-क अ़ला इ़तरति नबिय्यि-कल-इतरतिज़्-ज़ाइ़-अ़तिल ख़ाइ-फ़तिल मुस-तज़िल-लति बक़िय्यतिम मिनश-श-ज-रतित तय्यि-बतिज़ ज़ाकि-यतिल मुबारि-कह।

व-अअ़-लि अल्लाहुम-म कलि-म-त-हुम व अफ़ूलिज हुज-ज-तहुम वकशिफ़िल बला-अ वल्लावा-अ व ह़नादिसल अबाती़लि वल-अ़मा अ़न्हुम व सब्बित क़ुलू-ब शीअ़तिहिम् व हिज़्बि-क अ़ला ताअ़ति-क व विलायतिहिम् व नुसरतिहिम् व मुवालातिहिम् व अइ़न-हुम वम्-नह़-हुमुस्सब्-र अलल अज़ा फ़ी-क वज्अ़ल् हुम् अय्यामम् मश्हूदह, व अवक़ातम मह़मू-द-तम मसऊ़दह तूशिकु फ़ीहा फ़-र-ज-हुम व तूजिबु फ़ीहा तमकी-नहुम व नस्-र-हुम् कमा ज़मिन्-त लिअवलियाइ-क फ़ी किताबिकल मुन्ज़लि फ़इन-न-क क़ुल-त व क़ौलुकल ह़क़्।

व-अ़-दल्लाहुल् लज़ी-न आ-मनू मिन्कुम् व अमिलुस-सालिह़ाति लियस्-तख़्लिफ़न-नहुम् फ़िल अर्ज़ि कमस-तख़-ल-फ़ल्लज़ी-न मिन क़बलिहिम् वल युमक्कि-नन्-न लहुम दी-न-हुमुल-लज़ि़र-तज़ा लहुम् व-ला युबद-दिलन्-नहुम मिम बअ़दि ख़ौफ़िहिम् अम्नंय यअ़बुदू-ननी ला युशरिकू-न बी शै-अ।

अल्लाहुम-म फ़क्शिफ़् गुम-म-त-हुम या मल्ला यमलिकु कश-फ़ज़्-ज़ुर्रि इल्ला हु-व या वाह़िदु या अ-ह़-दु या ह़य्युु या क़य्यूमु व अना या इलाही अ़ब्दुकल ख़ाइफ़ु मिन्-क वर्राजिउ इलै-कस-साइलु लकल मुक़्बिलु अ़लै-कल-लाजि-ऊ इला फ़िना-इ-कल आ़लिमु बिअन्-न-ह़ु ला मल-ज-अ़ मिन्-क इल्ला इलैक।

अल्लाहुम-म फ़-तक़ब्बल दुआ़ई वस्-मअ़, या इलाही अला नि-य-ती व नज़्वाया वज़्अ़लनी मिम्मन् रज़ी-त अ-म-ल-हू व क़बिल-त नुसु-कहू व नज्जै-त-हु बिरह़्-मति-क इन-न-क अन्तल अ़ज़ीज़ुल करीम।

अल्लाहुम-म व सल्लि अव्व-लन व आख़ि-रन अ़ला मुह़म्मदिंव व आलि मुह़म्मद् व बारिक् अ़ला मुह़म्मदिंव व आलि मुह़म्मद् वर्हम् मुह़म्मदंव व आ-ल मुह़म्मद् बिअक-मलि व अफ़ूज़लि मा सल्लै-त व बा-रक्-त व तरह़्-ह़म्-त अ़ला अंबियाइ-क व रुसुलि-क व मलाइ-कति-क व ह़-म-लति अ़र्शि-क बि-ला-इलाहा इल्ला अन्-त अल्लाहुम-म ला तुफ़र्रिक़ बैनी व बैना मुह़म्मदिंव व आलि मुह़म्मद् स-ल-वातु-क अ़लैहि व अ़लैहिम वज़्अ़ल्नी या मौला-य मिन शीअ़ति मुह़म्मदिंव व अ़लिय्यिंव व फ़ाति-म-त वल ह़-स-नि वल ह़ुसैनि व ज़ुर्रिय्यति-हिमुत-ताहि-रतिल मुन-त-ज-बह व हब-लियत् तमस्सु-क बि-हब्लि-हिम् वर्रिंज़ा बि-सबीलिहिम् वल-अख़्-ज़ बि-त़री-क़तिहिम् इन-न-क जवादुन् करीम।

फिर सजदे में जाए और गाल को ज़मीन पर रख कर कहेः

या मंय यह़्कुमु मा यशा-उ व यफ़्-अ़लु मा युरीदु अन्-त ह़कम-त फ़-लकल ह़म्दु मह़मूदम् मशकूरा फ़-अज्जिल या मौला-य फ़-र-ज-हुम व फ़-र-ज-ना बिहिम् फ़-इन-न-क ज़मिन्-त एअ़-ज़ा-ज़-हुम बअ़-दज़-ज़िल्लति व तकसी-र-हुम बअ़दल क़िल्लति व इज़्हा-र-हुम बअ़दल ख़ुमूलि या अस्-द-क़स् सादिक़ीन व या अर्ह़मर राहिमीन, फ़-अस्अलु-क या इलाही व सय्यिदी मु-त-ज़र्रि-अ़न इलै-क बिजूदि-क व क-र-मि-क बस्-त अ़-म-ली वत्तजावु-ज़ अन्नी व क़बू-ल क़लीलि अ़-म-ली व कसी-रीह् वज़्ज़िया-द-त फ़ी अय्यामी व तबूलीग़ी ज़ालिकल मश्-ह-द व-अन् तज़्-अ़-ल-नी मिम्मंय युद्आ़ फ़-युजीबु इला त़ाअ़ति-हिम् व मुवालाति-हिम् व नस्रि-हिम् व तुरि-य-नी ज़ालि-क क़रीबन सरीअ़न फ़ी आ़फ़ि-यतिन इन-न-क अ़ला क़ुल्लि शैइन क़दीर।

फिर आसमान की तरफ़ देखे और कहेः

अ-ऊ-ज़ु बि-क मिन अन अक़ू-न मिनल-ल-ज़ी-न ला यरजू-न अय्या-म-क फ़-अइ़ज़ूनी या इलाही बि-रह-म-ति-क मिन ज़ालिक्।

इसके बाद आशुर को दिन ढलते वक़्त की ज़ियारत पढ़े जो तोहफ़तुल अवाम में मौजूद है।

इसके अलावा जियारते आशूरा का भी बहुत सवाब बयान हुआ है।

GULSHAN

MEHANDI & HERBALS

MOHTARMA "GULSHAN"
44, Ganesh Niwas, Shamla Hills Road
Near AAKASHWANI
BHOPAL (MP)
0755-4224261

IRFAN ALI PRADHAN
403 & 404, A Block,
REGALIA HEIGHTS, Ahmadabad Palace Road,
KOHE-FIZA, BHOPAL (M.P.) 462001, INDIA.
+919893030792, +917554220261

TAHA
TAHA TV
عروة الوثقى
MOHARRAM
2011
TAHA TV: 9936 653 509, 9453 826 444
Email: tahatv@gmail.com